उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—२ मार्च १९८३ अंक—३

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्री रामकृष्ण ने कहा है

(१)

लकड़ी में आग है, इस बोध—इस विश्वास—का नाम है, ज्ञान, और उस आग से खाना पकाना, खाना खाकर हृष्ट-पुष्ट होना, इसका नाम है विज्ञान। ईश्वर हैं, हृदय में यह बोध होना, इसका नाम है ज्ञान और उनके साथ वार्तालाप, उन्हें लेकर आनन्द करना—चाहे जिस भाव से हो, दास्य या सख्य या वात्सल्य या मधुर से—इसका नाम है विज्ञान। जीव और प्रपंच वे ही हुए हैं, इसके दर्शन करने का नाम है विज्ञान।

(२)

छः रिपुओं को ईश्वर की ओर मोड़ दो। आत्मा के साथ रमण करने की कामना हो। जो ईश्वर की राह पर बाधा पहुँचाते हैं, उन पर क्रोध हो। उसे (ईश्वर को) ही पाने के लिए लोभ। यदि ममता है तो उसी के लिए हो। जैसे 'मेरे राम' 'मेरे कृष्ण'। यदि अहंकार करना है तो विभीषण की तरह—'मैंने श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया, फिर यह सिर किसी दूसरे के सामने नहीं नवाऊँगा!'

(३)

साकार-निराकार दोनों सत्य हैं। केवल निराकार कहना कैसा है, जानते हो? जैसे शहनाई में सात छेद रहते हुए भी एक व्यक्ति केवल 'पों' करता रहता है, परन्तु दूसरे को देखो, कितनी ही राग-रागिनियाँ बजाता है। उसी प्रकार देखो, साकारवादी ईश्वर का कितने भावों से आस्वाद लेता है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर--अनेक भावों से।

असली बात क्या है जानते हो? किसी भी प्रकार से अमृत के कुण्ड में गिरना है। चाहे स्तव करके गिरो अथवा कोई धक्का दे दे और तुम जाकर कुण्ड में गिर पड़ो। परिणाम एक ही होगा। दोनों ही अमर होंगे।

श्रीरामकृष्णध्यानम्

—स्वामी अभेदानन्द

हृदयकमलमध्ये राजितं निर्विकल्पं
सदसदखिलभेदातीतमेकस्वरूपम् ।
प्रकृतिविकृतिशून्यं नित्यमानन्दमूर्तिं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ॥१

निरूपममतिसूक्ष्मं निष्प्रपंचं निरीहं
गगनसदृमीशं सर्वभूताधिवासम् ।
त्रिगुणरहितसच्चिद् ब्रह्मरूपं वरेण्यं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ॥२

वितरितुमवतीर्णं ज्ञानभक्तिप्रशांतीः
प्रणयगलितचित्तं जीवदुःखासहिष्णुम् ।
धृतसहजसमाधिं चिन्मयं कोमलांगं
विमलपरमहंसं रामकृष्णं भजामः ॥३

भावार्थ :—हमारे हृदय-कमल में जो निर्विकल्प भाव से विराजमान हैं, जो सत् एवं असत् के सारे भेदों से रहित एकस्वरूप हैं, जो प्रकृति जन्य समस्त विकारों से शून्य, नित्य आनन्द की मूर्ति हैं, उन विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण का हम भजन करते हैं ॥१

जो निरुपम, अति सूक्ष्म, निश्छल-निरीह हैं, आकाश की भाँति व्यापक जो प्रभु सभी जीवों में अवस्थित हैं, सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से रहित जो सत्-चित् ब्रह्मरूप और वरेण्य हैं, उन विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण का हम भजन करते हैं ॥२

ज्ञान, भक्ति और प्रशांति का जीवों में वितरण करने के लिए जो अवतरित हुए हैं, जिनका चित्त प्रेम से द्रविभूत है, जिन्हें जीवों का दुःख सहा नहीं जाता, जो सहज समाधि में लीन रहते हैं, जो चिन्मय हैं, और जिनके अंग-प्रत्यंग अत्यन्त कोमल हैं, उन विमल परमहंस श्रीरामकृष्ण का हम भजन करते हैं ।।३

सम्पादकीय सम्बोधन

मैं स्वयं मन्दिर बनूँगी

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

अभी कुछ दिन पहले मैं एक नगर में गया था। वहाँ भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के मंदिर का शिलान्यास होने वाला था। शिलान्यास समारोह में मन्दिर निर्माण-समिति के अध्यक्ष ने स्वागत-भाषण के क्रम में कहा—"मन्दिर के लिए धन एकत्र करने के सिलसिले में लोग मुझसे पूछते हैं; 'आखिर रामकृष्ण का मन्दिर क्यों बनाया जा रहा है ?' इससे लगता है कि लोग अभी भी श्रीराम-कृष्ण के महत्त्व को नहीं समझ पा रहे हैं।"

लोगों का पूछना सही है। मन्दिर श्रीरामकृष्ण का बने या किसी और देवता का, यह प्रश्न उठेगा ही कि आखिर मन्दिर क्यों ? रोज-रोज मन्दिर बन रहे हैं, मस्जिदें खड़ी हो रही हैं, गुरुद्वारे और गिरजे उठ रहे हैं। और उसी अनुपात में रोज-रोज हम गिर रहे हैं। जितनी तेजी से मन्दिरों का उत्थान हो रहा है, उतनी तेजी से हमारा पतन हो रहा है। मस्जिदों और गिरजों का निर्माण हो रहा है जितने ही तीव्र वेग से, मानवता का विनाश भी होता जा रहा है उतनी ही तेज गति से। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है ? और अगर मन्दिरों के बनते जाने पर भी हमारा परिष्कार नहीं हो पाता तो आखिर मन्दिर-मस्जिद बनें ही क्यों ? प्रश्न स्वाभाविक है।

लेकिन मुझे तो लगता है मन्दिर बन ही नहीं रहे हैं। हम या तो मन्दिर बना नहीं रहे या बनाने की कोशिश करने पर भी बना पा नहीं रहे हैं। मन्दिर हमारी जरूरतों में एक अहम जरूरत हैं। हमारी माँगों में एक प्रमुख माँग हैं मन्दिर। हम इसके बिना रह ही नहीं सकते। सच तो यह है कि जिस दिन मनुष्य ने पहले-पहल मन्दिर बनाया, उसी दिन उसने अपने जीवन की यात्रा में एक मोड़ ला दिया। उसने अपनी राह बदल दी। बाहर की दुनिया से अपने भीतर की दुनिया, अपने अन्तर्जगत् में यात्रा करने की शुरुआत उसने कर दी। प्रथम मन्दिर का निर्माण मानव जीवन की यात्रा की एक ऐतिहासिक घटना है, एक आध्यात्मिक उत्क्रांति है। आग का आविष्कार, मनुष्य द्वारा बाह्य-प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की दिशा में उठाया गया पहला बड़ा कदम है और मन्दिर का आविष्कार, अपनी अन्तः प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की दिशा में उठायी गयी उसकी पहली पुकार है, पहली आवाज है। मुझे लगता है, मन्दिर मनुष्य की चेतना के तार पर परमात्मा के लिए छेड़ी गयी पहली झंकार है, किसी अदृश्य को दृश्य बनाने की उसकी आत्मिक छटपटाहट-अकुलाहट की पहली पहचान है, उसकी जिन्दगी की डाल पर खिलने वाले निरंजन प्रेम के पुष्प की पहली सुगबुगाहट है, पहली सुगंध है। हमें मन्दिर चाहिए ही, जरूर चाहिए।

मुझे लगता है, सत्य के शोध में जहाँ किसी सर्वत्यागी, आत्म-संस्थ महात्मा ने साधना कर सिद्धि प्राप्त की, सत्य की उपलब्धि की, परमात्मा को जाना, अपने भीतर विराजमान हजार-हजार सूर्यों के प्रकाश का दर्शन किया, वहाँ उसकी स्मृति में कोई मन्दिर खड़ा हुआ होगा। उस महापुरुष, उस नर-देव की अन्तर-यात्रा के हर मोड़ पर, हर पड़ाव पर एक मन्दिर उठ गया होगा। ये मन्दिर के पत्थर मनुष्य की आध्यात्मिक साधना की लम्बी राह के मील के पत्थर हैं, साधना की प्रक्रिया के प्रतीक हैं। ऐसे महामानवों की स्मृति में हमने मन्दिर बनाये। इसीलिए, राम के, कृष्ण के, शिव के, बुद्ध के, जीसस के और रामकृष्ण के इतने सारे मन्दिर बने। यही नहीं, मन्दिर हमारी साधना के ही स्थल हो गये : आप देखेंगे, साधना में लीन हर महासाधक एक मन्दिर

जैसा ही लगता है। या, यों कहिए, हर मन्दिर समाधि में लीन किसी महायोगी-सा लगता है। आपने समाधिस्थ शिव की तस्वीर देखी है? समाधि में लीन भगवान् बुद्ध, महावीर या गुरु नानक की तस्वीरें देखी हैं? आपने निर्विकल्प समाधि में डूबे हुए भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की छवि देखी है? लगता है, ये समाधि में लीन होकर मन्दिर जैसे हो गये हैं। मन्दिरों की आकृति समाधिमग्न इन नरदेवों, इन अवतारों की आकृति से कितनी मिलती-जुलती है!

मन्दिर बनाना इसलिए जरूरी है कि हमें मन्दिर बनना है। मन्दिर इस बात का प्रति पल स्मरण कराता है कि हमारा लक्ष्य मन्दिर तक जाना है और मन्दिर जाते-जाते स्वयं मन्दिर हो जाना है। मन्दिर जाते-जाते हम स्वयं मन्दिर न हो गये तो हम मन्दिर क्या गये? वह एक रूटीन हो गया, एक औपचारिकता हो गयी, एक रूढ़ि हो गयी, एक आडम्बर हो गया। और मन्दिर के देवता की पूजा करते-करते हम तदाकार न हो गये, आराधक आराध्य न हो गया, साधक साध्य न हो गया तो हमारी सारी पूजा, आराधना और साधना किस काम की?

दक्षिणेश्वर में रानी रासमणि ने प्रायः सवा सौ वर्ष पूर्व (१३ मई, १८५५ ई० को) एक मन्दिर बनवाया था—बड़ा भव्य और विराट् मन्दिर—भवतारिणी काली का मन्दिर। इसके साथ ही राधाकान्त और शिव के मन्दिर भी थे। इन मन्दिरों की शोभा का क्या कहना! इसी काली मन्दिर में पुजारी के रूप में नियुक्त हुए थे श्रीरामकृष्ण। और कैसी पूजा की श्रीरामकृष्ण ने! विमन होकर बैठ जाते माँ के सम्मुख। कभी ध्यान में लीन हो जाते। कभी हँसते, कभी गाते, कभी रोते। बड़ी आकुलता से माँ की पुकार करते। धरती पर लोट-लोट कर, मुँह रगड़-रगड़ कर माँ के दर्शन के लिए छटपटाते। भीगे अँगोछे को जैसे कोई निचोड़ता है, वैसे ही माँ के दर्शन की टीस उनके मन-प्राणों को निचोड़ती थी। आप सब जानते हैं, कभी वे प्रतिमा की नाक के सामने अँगुली रख कर परखते कि माँ वस्तुतः पाषाणी है या जीवित। उसकी साँस चलती है या नहीं! जब देख लेते कि साँस की वायु उनकी उँगली का स्पर्श करती है, तो वे प्रसन्न हो जाते। भोग लगाने लगते तो पहले स्वयं खा लेते। कहते—'माँ, जब तक मैं नहीं खाऊँगा, तब तक तुम नहीं खाओगी। तो लो, पहले मैं ही खा लेता हूँ।' और फिर अपना जूठा माँ के मुँह में लपेट देते। अहा, कैसी प्रीति थी आराधक की अपनी आराध्या के लिए! और तब माँ ने उन्हें दर्शन दिये। माँ अपने इस आत्म-भोले, निश्छल-निरीह बेटे के लिए वास्तव की माँ होकर प्रकट हुईं। वे अपने इस बेटे से मिलतीं, बातें करतीं—आमने-सामने होकर। अब अराधक और अराध्या में अन्तर नहीं रहा। अब उस मन्दिर की अचल देवी और उसके सचल साधक में कोई फर्क न रहा। अब उस मन्दिर में एक और मन्दिर खड़ा हो गया। इसीसे श्रीरामकृष्ण के मन्दिर भी बनने लगे। भक्त स्वयं भगवान् जब हो जायगा तो उसका मन्दिर बनेगा ही।

कहते हैं, मीरा श्रीकृष्ण के मन्दिर में जाते ही तन्मय हो जाती थीं, बेसुध हो जाती थीं। उन्होंने लोक-लाज की परवाह न की। राजघराने की बहू हैं वह, इस बात की उन्हें चिन्ता न थी। उनके पतिदेव राणाजी ने अपने भाई को भेजा मीरा के पास उन्हें मन्दिर से लिवा लाने को। संदेश भेजा कि मीरा राजभवन के भीतर ही रहकर भक्ति करें। मगर मीरा तो थीं मीरा। उन्होंने अपने देवर से कहा—'लौट चलूँगी घर को मगर एक बार श्यामसुन्दर के सामने नाच लेने दो।' वे गयीं मन्दिर में। अपने श्यामसुन्दर से बिछुड़ने की टीस लेकर। विरह के दंश-दाह में जलती-दहकती मीरा ने मन्दिर का पट बन्द कर नाचना शुरू किया—अपने प्राण-प्यारे के सम्मुख। गाने लगीं—'मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय।……मीरा के प्रभु गिरिधर-नागर मिलि बिछुड़ै जनि कोय।' वे गाती रहीं बेहोशी में, बेखुदी में—मिलि बिछुड़ै जनि कोय, मिलि बिछुड़ै जनि कोय, मिलि बिछुड़ै जनि कोय। और वे विलीन हो गयीं अपने प्रिय में। एकाकार हो गयीं अपने प्रिय से। कुछ देर बाद जब मन्दिर का पट खोला गया तो भीतर मीरा नहीं

थीं। हाँ, श्रीकृष्ण की प्रतिमा के मुँह से मीरा के बाल के कुछ हिस्से और आँचल का थोड़ा छोर लटकते दिखाई दे रहे थे। आराधिका और आराध्य एक हो गये थे। मन्दिर में एक और मन्दिर समा गया था।

कैसे हुआ जाता है ऐसा मन्दिर! साधक को अपने साध्य के प्रति एकान्त अनुराग होना चाहिए। मन में विकार लेकर हम अपने इष्ट को रिझा नहीं सकते। चित्त को शुद्ध किये बिना हम अपने प्रभु तक जा नहीं सकते। श्रीरामकृष्ण ने एक बार अपने कुछ भक्तों से कहा था—"देखो, ईश्वर को देखा जा सकता है। वेद में कहा है, 'अवाङ्मनसगोचरम्।' इसका अर्थ यह है कि वे विषयासक्त मन के अगोचर हैं। वैष्णवचरण कहा करता था, 'वे शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि द्वारा प्राप्त करने योग्य हैं।' इसीलिए साधुसंग, प्रार्थना, गुरु का उपदेश—यह सब आवश्यक है। तभी चित्तशुद्धि होती है, तब उनका दर्शन होता है। मैले जल में निर्मली डालने से वह साफ होता है, तब मुँह देखा जाता है। मैले आईने में भी मुँह नहीं देखा जा सकता।

"चित्तशुद्धि के बाद भक्ति प्राप्त करने पर, उनकी कृपा से उनका दर्शन होता है।.........पहले हृदय-मन्दिर को साफ करना होता है। ठाकुरजी की प्रतिमा को लाना होता है। पूजा की तैयारी करनी होती है। कोई तैयारी नहीं, भों-भों करके शंख बजाने से क्या होगा?"[1]

अगर हमने मन-मन्दिर को साफ-शुद्ध नहीं किया तो बाहरी मन्दिरों-मस्जिदों में पूजा-पाठ के ढकोसले होते रहेंगे और हमारा पतन होता रहेगा। मन्दिरों में खड़ी मूर्तियों को हम दीये दिखाते रहेंगे, मन्दिर के प्राङ्गण में हम धूनी रमाते रहेंगे और हमारे जीवन में कोई बदलाव नहीं आयगा। कोई रूपान्तरण नहीं होगा। हम न घर के रहेंगे, न घाट के।

इस तुम्हारे हमारे विरह ने पिया
मजहबों के चलन को जनम दे दिया,
मस्जिदें रास्ते पर खड़ी हो गयीं
मंदिरों ने हमारा धरम ले लिया।

मूर्त्तियों को दिये हम दिखाते रहे
और धूनी तुम्हारी रमाते रहे,
दो तुम्हारे नयन, दो हमारे नयन
चार दीपक सदा जगमगाते रहे।

इसलिए प्रभु से अपने विरह को पाटना होगा। अपने मन के मन्दिर में ही प्रभु को स्थापित कर लेना होगा। सीता ने जैसे श्रीरामचन्द्र को अपने भीतर बैठा लिया—"लोचन-मग रामहि उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।" अपने हृदय-मन्दिर में राम को लाकर फिर पलकों के दरवाजों को श्रीजानकी जी ने बन्द कर दिया। डर, है कहीं प्राण-प्रियतम बाहर न निकल जायँ। कबीर ने भी ऐसा ही किया था—

नैनों की करि कोठरी, पुतरिन पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के पिय को लिया रिझाय॥

और फिर—सपने में साईं मिले सोवत लिया जगाय
आँखि न खोलूँ डरपता मत सपना हो जाय।

कैसी प्रीति है प्रभु के लिए, परमात्मा के लिए, अपने स्वामी के लिए। आँख खोलने में डर लगता है। सपनों में मिला हुआ प्रिय कहीं सपना न हो जाय, इसलिए कबीर आँख नहीं खोलते। कबीर मन्दिर हो गये उस समय जब उनके प्राणों में उनका प्रिय उतर गया।

मन्दिर बनने में हमारी बाधा क्या है? अपने आराध्य, अपने इष्ट का अपने प्राण-देवता के प्रेम का, प्रीति का अभाव और अपने भीतर अहम् का, अहंकार का भाव। अहंकार ही हमारी चित्त-शुद्धि में बाधा डालता है। अहंशून्य हुए बिना हम प्रीतिमय, रसमय, और संगीतमय नहीं हो सकते। बाँसुरी में सात-सात छिद्र हैं। लेकिन उसकी एक ही खूबी है। उसके भीतर कोई गाँठ नहीं है, कोई अवरोध नहीं है। वह भीतर से पूरी तरह खाली है, रीती है। इसीसे उसके भीतर से भुवन-मोहन संगीत की तान उठती है। इसीसे वह भगवान् श्रीकृष्ण के अधरों का स्पर्श-रस पाती है। भीतर से खाली हुए बिना हम प्रभु तक जा नहीं सकते। मन्दिर में अगर

1. श्रीरामकृष्णवचनामृत : प्रथम भाग : पृ० १७७-७८

बक्से, तिजोरियाँ और आलमारियाँ रहेंगी तब देवमूर्ति कहाँ स्थापित होगी ? कहाँ और कैसे विराजेंगे शंकर या रामकृष्ण ! हमें मन्दिर होना होगा—अहंकार-मुक्त और प्रेममय। क्योंकि हमारे देवता, हमारे प्रियतम मनके प्रेममय रथ पर चढ़कर ही आते हैं। मन के रथ को खाली करना होगा। फिर तो सपनों में नहीं, अपनी खुली आँखों, अपनी जाग्रत स्थिति में ही हम अपने प्रिय का दरस-परस कर सकेंगे—

कैसे छोड़ूँ यह जीर्ण जगत, रह गये अधूरे गान सखी !
पग ध्वनि सुनती हूँ, आएँगे मन के रथ पर मेहमान सखी !

मैंने कब माना, बहुत कहा—
जग ने, प्रिय आते सपने में,
मैं जगती हूँ, मैं तो देखूँगी
जाग्रत को ही अपने में,

आँखें मूँदूँ, यदि परस करें मेरे जी को, वे प्राण, सखी !
पग ध्वनि सुनती हूँ, आएँगे मन के रथ पर मेहमान सखी !

यह जिद है ! प्रेयसी की यही जिद है ! आते होंगे औरों के प्रियतम सपने में। मगर वह सोयेगी नहीं। वह जागकर ही अपने परम जाग्रत देवता का दर्शन करेगी। आँखें तो वह प्रियतम के स्पर्श के बाद, आलिंगन में भर जाने के बाद, आत्म-विभोर होकर ही मूँदेगी। उसके मन के रथ पर चढ़कर मेहमान आने वाले हैं, बल्कि आ ही रहे हैं। वह अभी से पाँवों की ध्वनि सुनने लगी है। ऐसे अपने को खाली करना होता है।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे— "कामिनी-कंचन में पड़कर मन मलिन हो गया है। सुई में कीच लग जाने से उसे चुम्बक नहीं खींच सकता, मिट्टी साफ कर देने ही से चुम्बक खींचता है। मन का मैल नेत्र-जल से धोया जा सकता है। 'हे ईश्वर, अब ऐसा काम न करूँगा' यह कहकर यदि कोई अनुताप करता हुआ रोये तो मैल धुल जाता है। तब ईश्वररूपी चुम्बक मनरूपी सुई को खींच लेता है। तब समाधि होती है, ईश्वर के दर्शन होते हैं। ......अहंकार का सम्पूर्ण त्याग कर देना चाहिए। मैं कर्ता हूँ, इस ज्ञान के रहते ईश्वर दर्शन नहीं होते। भाण्डार में अगर कोई हो, और तब घर के मालिक से अगर कोई कहे कि आप खुद चलकर चीजें निकाल दीजिए, तो वह यही कहता है 'है तो वहाँ एक आदमी, फिर मैं क्यों जाऊँ ?' जो खुद कर्ता बना बैठा है, उसके हृदय में ईश्वर सहज ही नहीं आते।"[2] अतः आवश्यक है कि हम निरहंकृत बनें। निरहंकृत हृदय से, अहंकारशून्य मन से प्रेम का निर्झर फूटता है। जब भीतर सेप्रभु के लिए प्रेम का निर्झर फूटने लगता है तब किसी प्रकार की पूजा-अर्चना की आवश्यकता नहीं रह जाती। किसी मन्दिर में जाने की जरूरत नहीं रह जाती। तब मन्दिर झर जाते हैं। प्रतिमाएँ झर जाती हैं। तब उस असीम करुणामय प्रभु का मन्दिर साधक का जीवन ही हो जाता है। जीवन-मन्दिर में देवता आ विराजते हैं। उस देवता की पगधूलि को लोचन का जल धोता रहता है। साधक का रोम-रोम अक्षत हो जाता है। पीड़ा चन्दन बन जाती है। अधर पल-पल प्रियतम का नाम जपते रहते हैं और पलकें ताल देने लगती हैं। एक पूरा नृत्य उतर आता है जीवन में। एक संगीत फूट पड़ता है जीवन में। एक सुगंध भर जाती है जीवन में। तब तो फिर—

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे !
मेरी साँसें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे !
पदरज को धोने उमड़े आते लोचन में जलकण रे !
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे !
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक-मन रे !
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे !
धूप बने उड़ते जाते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे !
प्रिय प्रिय जपते अधर, ताल देता पलकों का नर्त्तन रे !

यह स्थिति हो जाती है। संध्या-वंदन सब छूट जाते हैं। श्रीरामकृष्ण ने इस तथ्य पर, प्रेम-तत्व पर, बड़ा जोर दिया है। वे कहते हैं—"हवा के लिए पंखे की जरूरत है। ईश्वर पर अनुराग उत्पन्न करने के लिए जप,

2. श्रीरामकृष्णवचनामृत : प्रथम भाग : पृष्ठ २००-१

तप, उपवास आदि विधियाँ मानी जाती हैं; परन्तु जब दक्षिणी हवा आप बह चलती है तब लोग पंखा रख देते हैं। ईश्वर पर अनुराग, प्रेम, आप आ जाने से जप, तप आदि कर्म छूट जाते हैं। भगवत्प्रेम में मस्त हो जाने से वैध कर्म करने के लिए फिर किसको समय है!

"जब तक उन पर प्यार नहीं होगा, तब तक वह भक्ति कच्ची भक्ति है। जब उन पर प्यार होता है, तब वह भक्ति पक्की भक्ति कहलाती है।......

"इस प्यार, इस राग भक्ति के होने पर, स्त्री-पुत्र और आत्मीय परिवार की ओर पहले जैसा आकर्षण नहीं रह जाता, फिर तो उन पर दया होती है। घर-द्वार विदेश जैसा जान पड़ता है, उसे देखकर सिर्फ एक कर्मभूमि का ख्याल जगता है; जैसे घर देहात में और कलकत्ता है कर्मभूमि, कलकत्ते में किराये के मकान में रहना पड़ता है कर्म करने के लिए। ईश्वर पर प्यार होने से संसार की आसक्ति विषय बुद्धि—बिलकुल जाती रहेगी।

"विषय बुद्धि का लेशमात्र रहते उनके दर्शन नहीं हो सकते। दियासलाई अगर भींगी हो तो चाहे जितना रगड़ो, वह जलती ही नहीं—बीसों दियासलाई व्यर्थ ही बरबाद हो जाती है। विषयासक्त मन भींगी दियासलाई है।

"श्रीमती (राधिका) ने जब कहा, 'मैं सर्वत्र कृष्णमय देखती हूँ,' तब सखियाँ बोलीं, 'कहाँ, हम तो उन्हें नहीं देखतीं; तुम प्रलाप तो नहीं कर रही हो? श्रीमती बोलीं, 'सखियों, नेत्र में अनुराग का अंजन लगा लो, तभी उन्हें देखोगी।'......

"यह अनुराग, यह प्रेम, सच्ची भक्ति, यह प्यार यदि एक बार भी हो तो साकार और निराकार दोनों मिल जाते हैं।"[3]

प्रेम का निर्झर न फूटे, प्रीति का रस-ज्वार न उमड़े, अनुराग की उत्ताल तरंगें न उठें तो एकान्त समर्पण, सर्वात्म भाव से प्राणार्पण अपने प्रिय के पाद पद्मों में कैसे हो सकता है? और बिना सर्वात्मना समर्पण के हम अपने आराध्य देव से तदाकार, एकात्म कैसे हो सकते हैं? रोज-रोज के घुटन से, तिल-तिलकर जलने से कहीं अच्छा है एकबारगी अपने को अपने आराध्यदेव पर न्योछावर कर देना। तभी हम अपने आराध्यदेव, इष्टदेव के लिए उपयुक्त मन्दिर बन सकेंगे। अन्यथा नहीं—

रोज मरने से भला है, आज मैं ऐसे मरूँगी
ग्रीष्म-संध्या की जुही-सी, पाँव पर तेरे झरूँगी,
और प्राणों में तुझे भर, स्वयं कढ़ूँगी—मरूँगी
देवता तुम हो पिया, तो मैं स्वयं मन्दिर बनूँगी।

यह है मन्दिर बनने का राज। मन्दिर ऐसे बना जाता है—अपने प्राणदेवता के चरणों में समग्र भाव से समर्पित होकर। श्रीरामकृष्ण पूर्णावतार हैं, परब्रह्म हैं। संसार के समस्त भूतों में, सभी जीवों में उनका अधिवास है। सारा संसार ही उनका मन्दिर है। वे किसी एक मन्दिर में समा ही कैसे सकते हैं? लेकिन, जो समस्त विश्व में हैं, वे मन्दिर में भी हैं। इसलिए उनके मन्दिर-निर्माण की आवश्यकता है। हम ऐसे ही मन्दिरों को देखकर स्वयं मन्दिर बनने की ओर प्रवृत्त हों। अपने आराध्य से एकमेक होकर, निश्छल, निष्कलुष और परम पावन बनकर जब हम सब सचल मन्दिर, जीवित मन्दिर की तरह विश्व में विचरण करेंगे तब कहाँ रहेगी घृणा, कहाँ रहेगी हिंसा और कहाँ रहेंगी अन्य सारी विकृतियाँ? हम चलते-फिरते प्रकाश-पुंज रहेंगे। प्रेम हमारा स्वरूप होगा, सेवा हमारी पहचान। सत्य हमारा ऐश्वर्य होगा, सहयोग हमारा मधुगान।

भवतारिणी के मन्दिर में रहकर स्वयं मन्दिर और फिर स्वयं सचल ईश्वर बन जाने वाले परम करुणामय कल्पतरु भगवान श्री रामकृष्ण से मेरी आंतरिक प्रार्थना है कि उनके मन्दिर में जाने वाले हर प्राणी को, हम सब को, वे एक ऐसा मन्दिर बना दें जिसमें उनकी छवि शाश्वत रूप से विराजती रहे, उनका आलोक सदैव झलमलाता रहे, उनकी कृपा की अमृत-धार सतत-सर्वदा बरसती रहे। जय श्रीरामकृष्ण!

3. श्रीरामकृष्णवचनामृत : प्रथम भाग। पृ० १९९-२०१

अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण

श्रीमत स्वामी आत्मानन्दजी महाराज
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण—यह विषय अपने आप में कठिन एवं गंभीर है। अवतार वरिष्ठ का विवेचन करना सहज नहीं है। आप सब को ज्ञात होगा कि श्रीरामकृष्ण के लिए अवतार वरिष्ठ का विशेषण सर्व प्रथम स्वामी विवेकानन्दजी ने लगाया। उन्होंने जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण को समझा था उस प्रकार किसी दूसरे ने उन्हें नहीं समझा था। जहाँ इस प्रणाम मंत्र का आविष्करण हुआ, वह स्थान परम पवित्र एवं विलक्षण था। जैसे वेदों के मंत्र रचे नहीं गये बल्कि आविष्कृत हुए हैं ऋषियों के द्वारा वैसे ही यह भी एक मंत्र है जो विवेकानन्दजी की अनुभूति, एक विशेष भावापन्न स्थिति से उत्पन्न अनुभूति, से निकला।

श्रीयुत नवगोपाल घोष श्रीरामकृष्ण के बड़े प्रेमी भक्त थे। जब श्रीरामकृष्णदेव महासमाधि में लीन हो गये, नरेन्द्र स्वामी विवेकानन्द बनकर अमेरिका की यात्रा पर गये और वहाँ की धर्मसभा में अपने ओजस्वी, निर्भीक एवं परम उदार धर्म-दृष्टि-सम्पन्न व्याख्यानों के कारण विश्वविजेता बन कर भारत वापस आये उस समय की यह घटना है। तब बेलुड़ मठ स्थापित नहीं हुआ था। नवगोपाल बाबू ने गंगा के पश्चिम तट पर हावड़े के अंतर्गत रामकृष्णपुर में एक नया भवन बनवाया था। इसके लिए जमीन खरीदते समय उस स्थान का नाम रामकृष्णपुर सुनकर वे विशेष रूप से प्रसन्न हुए थे, क्योंकि इस गाँव के नाम की उनके इष्टदेव के नाम के साथ एकता थी। मकान बनने के कुछ ही दिनों के बाद स्वामीजी विदेश से कलकत्ता लौटे थे। नवगोपाल घोष की पत्नी नरेन्द्र को बचपन से ही पुत्रवत स्नेह करती थीं। घोषजी और उनकी पत्नी की प्रबल इच्छा थी कि अपने मकान में स्वामीजी (विवेकानन्दजी) से श्रीरामकृष्ण की मूर्ति को प्रतिष्ठित करावें एक दिन नवगोपाल बाबू की पत्नी ने आग्रह के स्वर में स्वामी विवेकानन्दजी से कहा—'हावड़ा में एक मकान बनवाया है। उसमें एक छोटा-सा मंदिर भी श्रीरामकृष्ण के निमित्त तैयार किया है। मेरी इच्छा है कि आप ठाकुर को प्रतिष्ठित करें मन्दिर में।" नरेन्द्र से ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) कहा करते थे "नरेन्द्र अपने कंध पर उठाकर मुझे जहाँ रखेगा वहीं रहूँगा।" अतः उनका अनुरोध था कि नरेन्द्र ही ठाकुर को प्रतिष्ठित करें। स्वामीजी यह अनुरोध सुनकर प्रसन्न हुए। वे अपने गुरुभाइयों के साथ आते हैं, । गीले वस्त्रों में आते हैं। फिर विभूति-मंडित स्वामीजी साक्षात् महादेव के समान पूजक के आसन पर बैठकर विधिवत अनुष्ठानकर श्रीरामकृष्ण का आवाहन करते हैं, सर्वाङ्ग पूजा सम्पन्न करते हैं और तभी उनके मुख से यह मंत्र, यह प्रणाम मंत्र निकलता है—

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥

यह बना बनाया श्लोक नहीं था। स्वामीजी की अनुभुति से निकला मंत्र था। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि श्रीरामकृष्ण किन अर्थों में अवतारवरिष्ठ थे? स्वामीजी ठाकुर के शिष्य थे। लगता है, अपने गुरुदेव के प्रति अतिशय भक्ति के उच्छ्वास में यह विशेषण उन्होंने लगा दिया हो! यदि ऐसा उन्होंने किया हो तो यह अस्वाभाविक भी नहीं है। हम भी अपने गुरु के प्रति विह्वल होकर अनेक विशेषण लगा देते हैं। अतः यह स्वभाविक प्रश्न होगा कि स्वामीजी ने भावनातिरेक के कारण अपने गुरु को अवतारवरिष्ठ कहा अथवा उसके पीछे कोई भूमिका थी? हम उसी को देखने का प्रयास करेंगे।

स्वामीजी ने श्रीरामकृष्ण के प्रति अपने भावों को अपने पत्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। उन्होंने अपने किसी भाषण में अपने गुरुदेव के प्रति अपने भावों को नहीं प्रकट किया। हाँ एक बार सार्वजनिक रूप से अपने गुरु के विषय में अमेरिका में भाषण दिया। "माइ मास्टर" (मेरे गुरुदेव) के नाम से यह भाषण दिया। अपने गुरुदेव पर उनका यह एकमात्र भाषण था। अमेरिका से भारत लौटने पर कलकत्ता-अभिनन्दन के उत्तर में अपने गुरुदेव के सम्बन्ध में थोड़ा-सा कहा। लेकिन जो थोड़ा-सा कहा उससे बहुत सारे अर्थ निकलते हैं।

जो समस्त अवतारों में श्रेष्ठ हों उन्हें अवतारवरिष्ठ कहकर पुकारते हैं। हमें देखना है कि इस कथन में कितनी गहराई है। स्वामीजी अपने गुरु की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। वे कहा करते थे—'इस समय निरक्षर, अज्ञ का रूप लेकर ईश्वर आये हैं।, फिर उन्हें हिन्दूधर्म के विरुद्ध आलोचना सुनने को मिलती थी। स्वामीजी के अँग्रेज प्रोफेसर कहा करते थे—'हिन्दूधर्म हीन है, हिन्दू-संस्कृति निकृष्ट है, इसमें बातें ऊँची हैं पर उनका अनुभव जीवन में नहीं है। हिन्दूधर्म के सिद्धान्तों का जीवन से सम्पर्क नहीं है।' अँग्रेजों के ये सर्वथा मिथ्या भाषण नहीं थे। एक ओर हम हिन्दुओं के ऊँचे सिद्धान्त, दूसरी ओर निम्न कोटि का व्यवहार—स्वामीजी ने यह जीवन में देखा था। मद्रास में सड़कों पर कोई चिल्लाकर जा रहा था। स्वामीजी उसकी भाषा नहीं समझते थे। एक अँग्रेजी जाननेवाले से उन्होंने पूछा, 'वह क्यों चिल्ला रहा है ?' उत्तर मिला, 'महाराज, यह अछूत है। इसलिए चिल्ला रहा है ताकि ऊँचे वर्ण वाले सावधान हो जायँ।" उन्होंने अछूतों के प्रति तिरस्कार देखा था पहले भी, पर ऐसा दुर्भाव पहले नहीं देखा था। उन्होंने फिर पूछा, 'सावधान होने की कौन-सी बात है ?' उत्तर मिला, 'यदि उच्चवर्ण वालों पर इसकी छाया पड़ जाय तो उन्हें स्नान करना होगा। अतः यह नियम बना दिया गया है कि अछूत सड़क पर चिल्लाकर चलें ताकि सवर्ण सावधान हो जायँ।' स्वामीजी रो पड़े। उन्होने अपनी करुणा अमेरिका से लिखे अपने पत्रों द्वारा अपने शिष्यों से व्यक्त की—'भारत मनुष्यों के रहने की जगह है या पागलखाना है!' आज भी कमोबेश यही स्थिति है। एक ओर हम ऊँचाई के गीत-गाते हैं—त्वं कुमार त्वयं उतवा कुमारी......तुम्हीं कुमार हो, तुम्हीं यौवन के मद में इठलाती कुमारी, तुम्हीं वृद्ध, तुम्हीं सारे विश्व में व्याप्त हो, तुम्हीं काले मेघ हो जिसपर बिजली कौंधती है, तुम्हीं ऋतु हो .... आदि। हमने ऐसे उदात्त गीत एक ओर बनाये और दूसरी ओर मध्यकाल में 'दूरम् अपसरति चाण्डाल' कहा। स्वामीजी ने यह भेद-भाव जीवन में देखा। ईसाई कहते थे, तुम हिन्दुओं के सिद्धान्त ऊँचे और व्यवहार ओछे हैं। और स्वामीजी कहते थे—'ईश्वर इस बार निरक्षर बनकर आये हैं यह दिखाने कि वेदों की अनुभूतियाँ, वेदों की वाणियाँ सही हैं। रामकृष्ण वेदों के विग्रह थे। उनमें लौकिक शिक्षा का अभाव था। उन्होंने जीवन में परम्परागत शिक्षा नहीं पायी थी। लेकिन उनकी अनुभूति से जो शास्त्र निकले वे अद्भुत थे।

दक्षिणेश्वर में भैरवी ब्राह्मणी कहती थीं कि श्रीरामकृष्ण अवतार हैं, साक्षात् गौड़ के अवतार हैं, महाप्रभु चैतन्य के अवतार हैं। भैरवी संस्कृत की पंडिता थीं, वैष्णव तंत्रों की महान् साधिका थीं। वे कहती थीं; लोग कहें तो मैं शास्त्रों से प्रमाणित कर दूँ कि रामकृष्ण साक्षात् ईश्वर के अवतार हैं। रामकृष्ण को साधना-काल में गात्रदाह होता था। यह दाह किसी दवा से नहीं छूटा। सो भैरवी ने गात्रदाह के सम्बन्ध में शास्त्रों से उक्तियाँ खोजीं। चैतन्यदेव को भी गात्रदाह होता था। तब उन्हें चन्दन लगाया जाता था। साधना की तीव्रता के कारण चैतन्यदेव को गात्रदाह होता था। चैतन्य की तरह भैरवी ने ठाकुर को चन्दन का लेप किया था और पुष्पहार पहनने को दिया था। और उनका गात्रदाह समाप्त हो गया। वैद्य हार गये, डाक्टर हार गये। भैरवी की बात सच निकली। अतः रानीरासमणि के दामाद माथुर बाबू ने पंडितों की सभा बुलायी, यह जानने के लिए कि श्रीरामकृष्ण की अवस्था कैसी है ? और इस सभा में सभी पंडितों ने स्वीकार किया कि रामकृष्ण अवतार हैं। इनकी अनुभूतियाँ सभी अवतरों से ऊपर है।

स्वामी विवेकानन्दजी अधिक तार्किक थे। ईश्वर निरक्षर का रूप लेकर इस बार कैसे अवतरित हुए हैं! वेदों की अनुभूतियाँ मनुष्यों में कैसे प्रकट होती हैं! ये प्रश्न स्वामीजी को भी शुरू में मथते थे। लेकिन उन्होंने भी देखा था कि श्रीरामकृष्ण ने सभी धार्मिक पथों की साधना की थी। वैसे, अवतारों की साधना का इतिहास उपलब्ध नहीं है। चैतन्यदेव की साधना का इतिहास कल्पित है। लेकिन श्रीरामकृष्ण की साधनाओं का इतिहास निकष पर कसकर लिखा गया है। स्वामी सारदानन्दजी ने रामकृष्ण लीला प्रसंग (हिन्दी) में उन घटनाओं का उल्लेख किया है जिनका प्रभाव उन पर पड़ा था। ठाकुर के जीवन के आखिरी पांच साल तक विवेकानन्दजी, सारदानन्दजी, ब्रह्मानन्दजी, मास्टर महाशय आदि, उनके सभी शिष्य उनके साथ थे। श्री 'म' (मास्टर महाशय श्री महेन्द्रनाथ गुप्त) श्रीरामकृष्ण वचनामृत में श्रीरामकृष्ण की सूक्ष्म ऐतिहासिकता का वर्णन कर गये हैं। रामकृष्ण के सम्बन्ध में इतिहास उपलब्ध है। यहाँ पर प्रत्येक घटना को तर्क की कसौटी पर कसकर लिखा गया है। अन्य अवतार भिन्न साधना पथ पर चले, ऐसा वर्णन नहीं मिलता है। लेकिन श्रीरामकृष्ण के साथ भिन्न ही बात है। उन्हें परमात्मा की उपलब्धि हो गयी है। माँ का दर्शन हो गया है। पर वे रुकते नहीं। वे माँ के पास जाते हैं। मानो उनकी अपनी माँ हो, जगज्जननी नहीं। काली से बातें करते हैं—सहजता से, भाव में,—माँ से कहते हैं—'तूने दर्शन तो दिया माँ, तू साथ तो रहती है, पर दूसरे—धर्म के मानने वाले तेरे पास कैसे अंत में आते है यह तूने नहीं दिखाया।" और वे हर प्रकार की धर्म साधना करते हैं वैष्णव, शैव शक्ति, तंत्र, अद्वैतभाव, ईस्लाम, इसाई मत आदि की साधना करते हैं, और सब की सत्यता का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। यह ब्रह्म की चरम परिणति है।

रामकृष्ण का संदेश महान् है। रामचरित मानस, गीता और रामकृष्ण वचनामृत साथ रखने वाले ग्रंथ है। संभव है, इनमें जीवन की हर समस्या का समाधान न हो, आज की दृष्टि से, आज के संदर्भ में। किन्तु ऐसी कोई दार्शनिक गुत्थी नहीं जिसका समाधान वचनामृत में न हो। ठाकुर चुटकुलों के माध्यम से उपदेश देते थे। सामान्य जन जीवन के ईर्द-गिर्द से उदाहरण प्रस्तुत कर वे लोगों की आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान करते थे।

रामकृष्ण की विविधता की साधना थी। उन्होंने माँ काली से जिज्ञासा की थी—'माँ, भिन्न-भिन्न मत वाले तुम्हारे पास कैसे पहुँचते थे।' और स्वयं भिन्न-भिन्न पथों की, मतों की साधना वे करने लगते हैं। और उन सत्यों को पाते हैं जिन्हें अन्य मतावलम्बियों ने पाया था। क्या कोई मनुष्य ऐसी और इतनी साधनाएँ करेगा? हर मत की साधना उन्होंने की। तंत्र की प्रथम साधना की। चौंसठ प्रमुख तंत्र हैं। प्रत्येक तंत्र के अनेक उपतंत्र हैं। और एक-एक मिनट में इन उपतंत्रों में सिद्धि उन्हें मिलती थी। एक उपतंत्र सिद्धि के लिए सारा जीवन साधकों का लग जाता है। किन्तु श्रीरामकृष्ण का विरल-विलक्षण मन एकाग्र है। उस मन को जिधर ले जायेंगे उधर सिद्धि मिल जाती है। रामकृष्ण ने व्याकुलता, आंतरिक व्यग्रता के बल पर, बिना गुरु के सहारे, भगवती भवतारिणी माँ से साक्षात्कार किया। भवतारिणी के मन्दिर में प्रतिमा के समक्ष आकुल मन से वे पूछते हैं—'माँ क्या तू सचमुच पाषाण है अथवा चिन्मयी है! गँवार जानकर मुझे ठग न लेना। अपना दर्शन देने के लिए जो आवश्यक साधना हो, मुझसे करा ले।' बड़ी अद्भुत्-विलक्षण प्रार्थना है यह। और उन्हें ब्रह्म की शक्ति की अनुभूति हो गयी।

लोग रामकृष्ण से पूछते—"ईश्वर का दर्शन कैसे हो सकता है?" वे प्रश्नकर्त्ता से कहते—'भाई, भगवान को कौन चाहता है? सब तो भगवान से ही चाहते हैं—पुत्र, धन, पद, प्रतिष्ठा, राज्य, सत्ता। लेकिन कोई तीन दिन-तीन रात प्रभु के लिए रो ले तो प्रभु का दर्शन हो जायगा।' फिर उन्हें दया आ गयी। कलियुग के प्राणियों के लिए इतना कहाँ सम्भव है! अतः एक दिन उन्होंने कहा—कोई प्रभु के लिए केवल एक दिन-एक रात रो ले तो भगवान का दर्शन हो जायगा। इतना ही नहीं, कोई एक क्षण के लिए भी रो ले प्रभु के लिए तो वे

मिल जायेंगे। लेकिन सम्पत्ति-नष्ट होने पर, पुत्र की मृत्यु होने पर हम घड़ों आंसू बहा देते हैं, प्रभु के लिए एक कतरा आंसू भी कौन बहाता है? यदि प्रभु के लिए आंखों में आंसू आ जाय, तो प्रभु का शीघ्र दर्शन हो जाय।' श्रीरामकृष्ण का यह दावा उनकी अपनी अनुभूति के बल पर आधारित था।

फिर भैरवी आयीं। उन्होंने वैष्णव साधनाएँ बतायीं। और एक-एक मिनट में तैयार मन से सिद्धि मिल गयी। ठाकुर ने भक्ति की पंचमहाभावों—दास्य, मधुर, सख्य, वात्सल्य और शान्त—से साधना की। जब उन्होंने अपने ऊपर हनुमान-भाव का आरोप किया (दास्य भाव से) तब धोती के छोर को पूंछ-सा लटकाकर पेड़ पर चढ़ जाते थे। तीन दिनों के बाद ही उन्होंने अपनी खुली आंखों से देखा—देवी सीता विराज रही हैं, हनुमान आकर चरणों पर बैठ गये हैं। सीता और हनुमान का दर्शन हो गया। वे दोनों उनके शरीर में प्रवेश कर गये ठाकुर ने स्वयं कहा है—मैंने देखा माता जानकी के हाथों में कंगन थे। आदि....। फिर उन्होंने अपनी लीला सहधर्मिणी सारदा-देवी के लिए वैसा ही कंगन बनवा दिया। रामकृष्ण कलाकार थे न! उनके होठों पर भुवन मोहिनी मुस्कान खेलती रहती थी। प्रताप चन्द्र मजुमदार लिखते हैं—"भला मैं उनकी सेवा में घंटों क्यों बैठा करूं—मैं जिसने डिजरेली और फाकेट के विचार सुने हैं, जिसने स्टानले और मैक्समूलर की विद्याएं प्राप्त की हैं, जिसने यूरोप के बीसियों विद्वानों ओर धर्म-पुरुषों के विचारों का पान किया है? किन्तु, केवल मैं ही नहीं, यहां तो मेरे जैसे दर्जनों लोग हैं जो यही करते हैं...उनका धर्म आनन्द है, उनकी पूजा समाधि है। अहर्निश उनका समस्त अस्तित्व एक विचित्र विश्वास और भावना की ज्वाला से प्रदीप्त रहता है। समाधि के क्षणों में उनके अधरों पर ऐसी मुस्कान खेलती रहती है जैसी किसी मानव पर मैंने नहीं देखी।" रामकृष्ण स्वयं कहते थे—"माता सीता के दर्शन जब हुए तो उन्होंने कहा—'ले अपनी मुस्कान तुम्हें देती जाती हूँ।" रामकृष्ण ने यह बढ़ाकर नहीं कहा। सत्य को बढ़ाकर वे कभी बेताल नहीं कहते थे।

संदेह नरेन्द्र नाथ (स्वामी विवेकानन्द) को भी हुआ। क्या ठाकुर जो कहते हैं, ठीक कहते हैं! नरेन्द्रनाथ वैज्ञानिक बुद्धि सम्पन्न थे। अमेरिका में प्रो० हेनरी राईट उनसे मिलकर उनकी प्रतिभा पर चकित हो गया था। उसने प्रो० बैरोज को लिखा था कि अमेरिका के समस्त विद्वानों की एकत्र विद्वत्ता से बढ़कर विवेकानन्द की प्रतिभा है। उसने स्वामीजी से कहा था कि धर्मसभा में आपसे परिचय पत्र मांगना मानो सूर्य से यह पूछना है कि तुम्हें चमकने का क्या अधिकार है। कलकत्ते के प्रो० हेस्टी ने नरेन्द्र की प्रशंसा में कहा था—'मैं काफी घूमा हूँ। जर्मन विश्वविद्यालय भी गया। पर इस लड़के जैसा मेधावी छात्र कहीं नहीं मिला। नरेन्द्र ने छात्रावस्था में ही स्पेन्सर के तर्कशास्त्र की भूलों की ओर ध्यान दिलाते हुए स्पेंसर को पत्र लिखा था। स्पेन्सर ने उत्तर दिया—मैं तर्क की यह भूल स्वीकार करता हूँ। अगले संस्करण में सुधार करूँगा। ऐसे विद्यार्थी नरेन्द्र रामकृष्ण को सदैव परखते हैं। उनके भीतर संदेह की आंधी बहती थी। उन्होंने रामकृष्ण से पूछा था—क्या आपने ईश्वर को देखा है? रामकृष्ण ने कहा था—'हाँ, देखा है। तुम भी जीवन की प्रयोगशाला में धर्म को साध सकते हो।' रामकृष्ण पत्थर की थाली में खाते थे। धातु का स्पर्श उन्हें सहन नहीं होता था। नरेन्द्रनाथ ने सोचा, लोगों को अधिक बढ़ा-चढ़ाकर अपने विषय में कहने की आदत होती है, अपनी छवि सुन्दर रूप से प्रस्तुत करने के लिए। अतः उन्होंने परीक्षा ली। एक रुपया रामकृष्ण के बिस्तर के नीचे डाल दिया। रामकृष्ण ज्यों ही बिस्तर पर पाँव रखते हैं, उन्हें लगता है मानो बिच्छू ने डंक मार दिया। वे समझ गये, यह काम नरेन्द्र का है। उन्होंने कहा—'तुमने ठीक किया नरेन्द्र। गुरु की परीक्षा की। साधु को रात में देखो, दिन में देखो, परीक्षा कर लो रे।' नरेन्द्र लज्जित हो गये। बोले—'मुझे संशय-पिशाच लगा हुआ है।" तो नरेन्द्र जैसे संशयवादी ने भी देखा कि रामकृष्ण झूठ नहीं बोलते थे। वस्तुतः जो समर्पित हो जाता है मां के चरणों में, उसके पैर मां बेताल में, पड़ने नहीं देती।

रामकृष्ण कहते थे, 'जिस सांचे में अपने मन को ढालता हूँ, उसी में वह ढल जाता है। दास्य भाव की साधना

में हनुमान भाव की साधना करता था। इस क्रम में रीढ़ की हड्डी एक इंच बढ़ गयी थी—पूंछ के स्थान पर।' वस्तुतः मन ही शरीर को रचता है। चिंतन हमारे मन को रचता है। भोजन भी मन को रचता है। किन्तु मन के भाव-सा ही शरीर बनता-बिगड़ता है—ऐसा मनोविज्ञान कहता है।

दूसरा दृष्टांत। मधुर भाव की साधना के समय रामकृष्णदेव अपने में राधा भाव का आरोप करते थे। इस क्रम में एक समय ऐसा आया जब उनके नीचे एक-एक बूंद रक्त स्राव होने लगा था। ऐसा केवल रामकृष्ण ही कर सकते थे। ज्ञान, भक्ति और कठोर कर्म की साधनाऐं उन्होंने की। भक्ति में पांचों महाभावों की। फिर ईसाई और इस्लाम धर्म की साधना की। ईसाई धर्म की साधना में एक दिन उन्हें ईसा मसीह के दर्शन हुए। उन्होंने देखा, ईसा की नाक कुछ चपटी है। जब उन्होंने ईसा की नाक के विषय में बताया तो लोगों को विश्वास नहीं हुआ। बाद में जब स्वामी सारदानन्द अमेरिका गये तो वहां हिब्रू भाषा में लिखित एक पुस्तक देखी। उसमें लिखा था कि ईसा की आकृति के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रंथों में तीन मत हैं। एक मत के अनुसार ईसा की नाक कुछ चपटी थी। सारदानन्दजी को रामकृष्ण की बातों का स्मरण हो आया। वस्तुतः रामकृष्ण द्वारा ईसा के दर्शन का वर्णन भावोच्छ्वास में नहीं किया गया था। वह एक वास्तविक घटना थी।

फिर रामकृष्ण अद्वैत वेदान्त धर्म की साधना करते हैं। और तीन दिनों की साधना में वे निर्विकल्प समाधि में चले गये और तीन दिनों तक उसी में रहे। तोतापुरी उनके गुरु थे। जिस समाधि के लिए उन्होंने ४० वर्ष बिताये थे उसे श्रीरामकृष्ण ने तीन दिनों में पा लिया था। तोतापुरी ने अद्वैत का अभ्यास किया था, श्रीरामकृष्ण ने सगुण का। उनके अनुसार काली शक्ति हैं, आधार ब्रह्म है। रामकृष्ण में अद्वैत दर्शन पूर्णत्व को प्राप्त करता है। तोतापुरी कहते थे—यह संसार स्वप्न, जाग्रत और निद्रा तीनों अवस्थाओं में असत्य है। रामकृष्ण का कथन है कि दूध से उसकी सफेद को, अग्नि से उसकी दाहकता को आप नहीं अलग कर सकते। सांप जब कुंडली मार कर बैठा रहता है तब वह ब्रह्म की अवस्था में रहता है और जब वह चलने लगता है तब उसकी शक्ति क्रियमान रहती है। अतः ब्रह्म और शक्ति दोनों दूध और सफेदी, अग्नि और दाहकता की भांति, सत्य हैं। अंत में तोतापुरी इस तथ्य को मानने को बाध्य हो गये। जब उनके पेट में पीड़ा होने लगी तो मन को लाख शरीर से हटाकर ब्रह्म में लगाने की चेष्टा करने पर भी छटपटाहट नहीं मिटी। अंत में मे गंगा में डूबने चले गये। वे इस पार से उस पार तक चले गये लेकिन गंगा में उन्हें डूबने लायक जल नहीं मिला। वे लौट आये। और गंगा में फिर अथाह जल लहराने लगा। तब उन्हें ब्रह्म की शक्ति पर भी विश्वास हुआ।

एक बार रामकृष्ण ताली बजा-बजाकर कीर्त्तन कर रहे थे। तोतापुरी ने कहा—क्या रोटी ठोंक रहे हो?' और बाद में स्वयं वे ताली बजा-बजाकर मां के मन्दिर में कूद रहे थे। ठाकुर ने कहा—'क्या बात है आज तो आप बड़ी-बड़ी रोटी ठोंक रहे हैं?'' तोतातुरी ने कहा—'आज ब्रह्म सत्य और शक्ति भी सत्य, इस तथ्य का ज्ञान हो गया है।'

अतः रामकृष्णदेव ने जो बातें प्रतिष्ठित कीं, वे मौखिक नहीं थीं। वैज्ञानिक की भांति जीवन की प्रयोगशाला में उतार कर, परख कर तब उस सत्य की घोषणा की थी। उन्होंने एक नये धर्म की ही प्रतिष्ठा की। वे संन्यासी भी थे और गृहस्थ भी। अपनी मर्जी से विवाह किया था। १४ वर्षों तक पत्नी साथ रही थीं। उन्नीस वर्ष की उम्र में सारदादेवी दक्षिणेश्वर आयीं तो उन्होंने बड़े प्यार से उन्हें स्वीकार किया। छः महीने तक एक साथ एक कमरे में दोनों रहे। दोनों युवक थे। पर देह-बोध किसी को नहीं था। तोतातुरी कहते थे—'तेरी पत्नी जब साथ रहेगी तब तुझे ज्ञान का बोध होगा। पत्नी को दूर रखकर वेदान्ती बनने वाले बहुत हैं, लेकिन पत्नी के साथ रहकर आत्मबोध करनेवाले विरले ही है।'' कबीर जैसे माहात्मा ने पत्नी के सम्बन्ध में कहा—

नारी तो हमहूँ करी तब ना किया विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी महाविकार॥

ऐसा कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता कि कोई पत्नी को साथ रखकर ब्रह्मचारी बना रहे, गृहस्थ और संन्यासी साथ-साथ रहे। ऐसा जीवन तो केवल रामकृष्ण ही जी सकते थे।

जिन आदर्शों की कल्पना हो सकती है उन्हें अपने जीवन में उतारकर श्रीरामकृष्ण चले गये। १८८६ ई० के १५ अगस्त की मध्य रात्रि के बाद उन्होंने महासमाधि ले ली काशीपुर उद्यान में। वहाँ भी विवेकानन्द को संशय हो जाता है। शायद दो महीने से श्रीरामकृष्ण बोल नहीं पा रहे थे। पीड़ा से दिन-रात कराहते रहते थे। और नरेन्द्र को संशय-पिशाच जगता है। वे सोचते हैं—यही हैं वे जो अपने को राम और कृष्ण का अवतार कहते हैं और अभी बोल भी नहीं पाते हैं। अभी यदि कहें कि वे राम और कृष्ण के अवतार हैं तब जानूँ।' और रामकृष्ण कह उठते हैं—"एखुनो अविश्वास, एखुनो अविश्वास। मैं फिर से कहता हूँ नरेन, जो राम, जो कृष्ण वही रामकृष्ण। और वह भी तुम्हारे वेदान्त की दृष्टि से नहीं प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष।' अद्भुत वाणी थी। सब ने यह वाणी सुनी। तब सदा के लिए नरेन्द्रनाथ का संशय मिटता है।

दो घटनाएँ और। काशीपुर उद्यान में पंडित शशधर शास्त्री तर्कचूड़ामणि रामकृष्ण के दर्शनार्थ पहुँचे। उन्होंने ठाकुर से कहा—'यदि आप अपने मन को अपने रोग में केन्द्रित करें तो आपके गले का घाव ठीक हो जायगा।' ठाकुर ने तुरत उत्तर दिया—'यह तू क्या कहता है? जिस मन को मैंने जगदम्बा में लगा दिया उसे अब हाड़-मांस में कैसे लगाऊँ? तुझे लज्जा नहीं आती?' शास्त्री लजा गये।

फिर नरेन्द्र ने भी ठाकुर से कहा—'आप अपने मन को गले पर केन्द्रित करें। ठाकुर ने कहा—'तू भी यही कहता है! यह तो थूक चाटना है रे।' नरेन्द्र ने प्रार्थना की—'अपने लिए नहीं तो कम से कम हमारे दुःख को देखकर माँ से कहिए कि कम से कम खाने में आपको कष्ट न हो।' दूसरे दिन ठाकुर ने नरेन्द्र से कहा—'माँ से कहा—माँ, नरेन्द्र कहता है कम से कम खाने में मुझे कष्ट न हो। माँ ने उत्तर दिया—क्या तू उन सब के मुँह से नहीं खाता?' वेदान्त का अद्वैत तत्व उस पीड़ा की घड़ी में भी ठाकुर ने नरेन्द्र को कैसा समझाया? नरेन्द्र ने इसी अद्वैत भाव को विनय पूर्वक ग्रहण किया और सेवा का तत्व समझा। अपनी मुक्ति की अपेक्षा अन्य की सेवा में जीवन अर्पण कर देने की महान् प्रेरणा से रामकृष्ण संघ की स्थापना की।

अवतार करुणामय होते हैं। रामकृष्ण करुणामय अवतार थे। गिरीशचन्द्र घोष से कोई दुष्कर्म छूटा नहीं था। उन्हें भी उन्होंने अपनी अहेतुकी कृपा से ब्रह्मज्ञानी बना दिया। उनके पास दुराचारी आते, पातकी आते, तार्किक आते, वेश्याएँ आतीं। वे सब पर कृपा करते। वे सबके लिए थे। वे कहते, समाज जिन पर थूकता है, मैं उनके लिए हूँ।' अवतार की यह करुणा अद्भुत है। माँ की करुणा हीन और दुर्बल के प्रति होती है। अतः जो पतित थे, जो गिरे थे उनको रामकृष्ण ऊपर उठाते हैं।

ऐसा अद्भुत अवतार वरिष्ठ हमारे युग में आया। गीता में अर्जुन ने कृष्ण से पूछा—स्थितप्रज्ञस्य का भाषा—स्थितप्रज्ञ किसे कहते हैं?' आप रामकृष्ण वचनामृत पढ़िए। एक स्थितप्रज्ञ कैसे बैठता है, कैसे बोलता है, इन सबका जीवित प्रमाण उसमें मिलेगा। श्री 'म' ने श्रीरामकृष्ण के विषय में कहा है—'तुम धर्मता है जो धर्म की, उसकी प्रतिष्ठा करने आये हो। तुम्हारे जीवन में सब धर्मों का सौरभ बिखरा पड़ा है।' यह कथन अक्षरशः सत्य है—तर्क, इतिहास और भावना की दृष्टि से उन अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण के चरणों में हमारी प्रार्थना हो—प्रभो, हमारा मंगल करो, धर्म का मूल स्वरूप धर्म के आडम्बर में समाप्त न हो जाय, यह जीवन सबके लिए सुलभ हो जाय। प्रभु हम सबका मंगल करें। □

(रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में गत वर्ष स्वामी आत्मानन्द जी द्वारा दिये गये एक प्रवचन पर आधारित।—सं०)

श्रीरामकृष्ण जन्मोत्सव

—श्रीकान्त

श्रियं सरस्वतीं गौरीं गणेशं स्कन्दमीश्वरम् ।
ब्रह्माणं बह्निमिन्द्रादीन् श्रीगदाधरं नमाम्यहम् ॥

आसीद्वापरे आगते ब्रजवधू कान्तो मितान्तं हरिः
स्वप्रेमामृत दानदक्ष सुतनुः कृष्णावतार स्वयं
घोरे ऽस्मिन ॥

युगशेष संकट दिने श्रीरामकृष्णं हरिराविर्भूय ।
कलावगाध कुलायां जाता जना नामऽसौ ॥

विचक्षणा यच्चरणोप्रसादनात सङ्ग समुत्सृज्य
विशुद्ध मानसाः ।
विन्दन्तिहि ब्रह्मगतिं सुदुर्लभा श्रीरामकृष्णाय
सुखात्मने नमः ॥

श्रीरामकृष्ण वचसा नहि तुल्यमस्ति श्रीरामकृष्ण
मनसा विमलं सदैव ।
श्रीरामकृष्ण भगवानखिलार्थदाता श्रीरामकृष्ण
पदमेव गतिर्ममास्तु ॥

फाल्गुन शुक्ल द्वितीया की पावन तिथि नित्य अजन्मा के दिव्य जन्म का महामहोत्सव दिवस है । समस्त प्रकृति को धन्य करते हुए स्वयंरूप दिव्य नराकृति भगवान प्रकट हुए हैं । भगवान के अनेक विभिन्न अवतार होते हैं :— पुरुषावतार, लीलावतार, गुणावतार, धन्वन्तरावतार' युगावतार, आवेशावतार, कल्पावतार, अर्चावतार आदि और भगवान, स्वरूपतः नित्य सत्य परिपूर्णतम होने के कारण उनका प्रत्येक रूप ही नित्य शाश्वत सच्चिनमय, हानीपादानरहित, परानन्द सन्दोह और पूर्णतया है । तथापि गीता की दृष्टि से शक्ति के प्रकाश के तारतम्यानुसार भेद दिखायी देता है ।

पूर्तिः सार्वत्रिकी यद्यप्य विशेषा तथापि हि ।
तारतम्यं च तच्छक्तेव्यक्त्य व्यक्ति कृतं भवेत् ॥"
(प्रेमदरत्नावलि १/१४)

पर जब भगवान स्वयं अपने पूर्णरूप में प्रकट होते हैं, तब वे सर्वावतारमय होते हैं । इन्हीं को परिपूर्णतम भी कहा जाता है । महामुनि गर्गाचार्य कहते हैं :—

'यस्मिन सर्वाणि तेजांसिविलीयन्ते स्वतेजसी तं वदन्ति परे
साक्षात परिपूर्णतमः स्वयं ।'

अर्थात् सभी तेज जिसके स्वतेज में विलीन होते हैं उन्हें ही परिपूर्णतम कहा जाता है । (आप सभी ने पढ़ा होगा कि भगवान श्रीरामकृष्ण के साधन काल में सभी देवदेवताओं के तेज इनके तेज में विलीन हो गए थे ।) ऐसे जो परिपूर्णतम स्वयं भगवान श्री रामकृष्ण प्रति कल्प में स्वयंरूप में प्रकट होते हैं और वे प्रकट होते हैं मधुर-मनोहर नरवपु रूप में । इसी भगवान के सर्वभूत महेश्वर सर्वरूप के तत्त्व को न जाननेवाले मूढ़ लोग भगवान के इस रूप को देखकर उनको पाञ्च भौतिक देह विशिष्ट मनुष्य मान लेते हैं—

"अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम् ॥"
(गी० ९-११)

अर्थात् सम्पूर्ण भूतों के महान् ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ लोग मनुष्य का शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं । वास्तव में स्वयं भगवान की यह नराकृति नरलोक के नर शरीरों के आदर्श पर बनी हुई नहीं है, यह नित्य है । वस्तुतः भगवद्देह के आदर्श पर नर शरीर का निर्माण है । भगवान का शरीर दिव्य अप्राकृत देह-देही भेद से रहित जन्म-मृत्यु से रहित सर्वकारण कारण नित्य सिद्ध निर्विकार, अनादि सर्वादि, सच्चिदानन्दघन स्वरूप है । और नर-लोक का नर-शरीर स्वतः मांसादि से गठित, खण्डित, जन्ममृत्युशील, पञ्चभूत निर्मित, आत्मा (देही) और देह

के भेद से युक्त तथा विनाशी है। भगवद् विग्रह स्वेच्छामय विशुद्ध भगवत्स्वरूप है—

स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।'

(श्री मद्भागवत)

उसका प्रारब्ध परवश निर्माण कर्मयोग तथा विनाश नहीं होता, वह नित्य सत्य, सनातन तथा दिव्य रूप है। भगवत स्वरूपा प्रकृति में अधिष्ठित होकर अपनी ही स्वरूपभूता लीलारूप माया से प्रकट और अप्रकट है। तंत्रशास्त्र में कहा गया है:—

'निर्दोष पूर्ण गुणविग्रह आत्मतन्त्री: निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीन: आनन्दमात्र करवाह मुखोदरादि: सर्वत्र च स्वगतभेद विवर्जितात्मा।'

भगवान का दिव्य शरीर मोह, तन्द्रा, भ्रम, क्षता, काम, क्रोध, असत्य आकांक्षा, रोग, जरा, भय, विभ्रम-विषमता, परापेक्षा, परिवर्त्तनशीलता, अनित्यता बिना आदि दोषों से सर्वथा रहित तथा सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, सत्यविज्ञानन्दरूपता, सर्वैश्वर्य असमोघ्व माधुर्य आदि गुणों से परिपूर्ण है। वह काल कर्मादि के अधीन नहीं है, पाँच भौतिक शरीर के जड़त्व आदि से रहित है, उसके हाथ, पैर, मुख, उदर आदि सभी एकमात्र दिव्य चिन्मयानन्द रूप हैं। और उसमें वृक्ष में पत्र, पुष्प, फलादि की भाँति स्वगत, दूसरे फल के वृक्ष के रूप में सजातीय तथा शिला आदि के रूप में विजातीय भेद नहीं है, वह केवल भगवद रूप ही है।

भगवान के अवतार के तीन हेतु माने गये हैं—साधुओं का परित्राण, दुष्कृतिकारियों का विनाश और धर्म का संस्थापन। स्वयं भगवान के इस स्वयं रूपावतार में अन्यान्य अवतारी रूपों का समावेश होने के कारण भगवान के द्वारा पापात्माओं, राजाओं के रूप में प्रकट असुरों का, अन्यान्य विविध रूपों में प्रकट असुरों का तथा उनके अनुगामी असुर भावापन्न दुष्ट प्रकृतिवालों द्वारा सताये हुए सदाचारी साधु-प्रकृति-पुरुषों का परित्राण और जघन्य पाप प्रवृतिमय असुर मानवों के द्वारा प्रचारित अधर्म का विध्वंस करके विशुद्ध सनातन धर्म का भली-भाँति संस्थान —ये तीनों मंगलमय महान् कार्य सम्पादन होते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं। अतएव, जो लोग इन निमित्तों से भगवान का अवतरित होना मानते हैं। वे ठीक ही मानते हैं।

परन्तु स्वयं भगवान का परिपूर्ण स्वयं स्वरूपावतार की भाँति केवल धर्म-ग्लानि और अधर्म की वृद्धि होने पर साधु-परित्राण, दुष्ट विनाश और धर्म संस्थापन के लिए ही नहीं होता, वह तो उनके निज स्वरूप वितरण के लिए स्वरूपानन्द-आस्वादन रूप विनोद के लिए ही होता है। इसी से श्रीमद्भागवत में ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीदेव गर्भ स्तुति में कहा है—

'नतेऽभवस्यश भवस्य कारण बिना विनोदं बत तर्कयामहे।

भयो निरोध: स्थितिरप्यविद्यथाकृता यतस्त्वय्यभया श्रयात्मनि॥

(सं० १०-२-३९)

इसका भावार्थ यह है कि हे ईश! सर्वनियन्ता! आप अजन्मा हैं। आपके इस दिव्य जन्म का हेतु विनोद (स्वरूपानन्दास्वादन) के सिवा अन्य कुछ भी नहीं हो सकता (जगत की सृष्टि स्थित लय आदि आप के इस आविर्भाव में हेतु नहीं हैं) क्योंकि आप सर्वाश्रय हैं। आपकी आश्रिता माया शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म, रुद्र आदि आप के गुणावतार इन कार्यों को सम्पन्न करते हैं। आप अभय हैं। आपके नाम कीर्त्तन स्मरणाभास से ही रावण, कंस आदि असुरों के भय से पूर्णतया रक्षा हो सकती है। इन असुरों का बध करके धर्मसंस्थापन करने के लिए आप के स्वयं आविर्भूत होते की आवश्यकता नहीं है।

फाल्गुन शुक्ल द्वितीया तिथि को जब परिपूर्णतम स्वयं भगवान रामकृष्ण इस पृथ्वी को पावन करने के के लिए इस धरातल पर अवतरित हुए तो वे एक चूल्हे में सारे शरीर में राख लपेटे पाये गये। कामारिन ने उठाना चाहा लेकिन वे न उठे। तब उनके पिता श्री खुदीराम को बुलाया गया। उन्होंने उठाकर उन्हें चूल्हे से निकाला और बिछावन पर रखा तथा देखते हैं कि बच्चा चतुर्भुज है और शंख-चक्र-गदा-पद्म आदि के साथ है।

दृष्ट्वा श्री भगवानाह विस्मित पितरं तथा।
भवन्तौ पितरावास्ता द्वापरे मम जन्मनि॥
नाम्नानक दुन्दुभिभस्त्वं देवकी गर्भधारिणी।
यदा भ्यान्त पुनर्जातः प्राक् जन्म स्मरणादहे॥
पूर्ण ब्रह्म स्वरूपेण भवद्भूयां ब्रह्म जन्मना।
कलेर्जीवान् परित्रातुं धर्म संरक्षणाय च॥
(श्रीरामकृष्ण भागवतम्)

श्री खुदीराम ने इस प्रकार चतुर्भुज भगवान को देखकर प्रणत पुरः सर कृतांजलि होकर उन्हें प्रणाम किया और स्तुति करने लगे। भगवान अपने पिता को विस्मित होते देख बोले—'द्वापर में आप दोनों ही मेरे माता-पिता थे। उस समय आपका नाम वसुदेव था। और माता का नाम देवकी। आप लोगों के स्मरण के लिए मैं पुनः सत्ययुग में जीव समूह के उद्धारार्थ एवं सनातन धर्म के रक्षार्थ पूर्णब्रह्मस्वरूप में प्रकाशित हुआ हूँ।'

'इत्थमुक्त्वा स भगवांस्तूष्णीमासीत् स्वमायया।
पश्यतोस्तत्क्षणात् पित्रोर्बभूव प्राकृतः शिशुः॥
(श्रीरामकृष्ण भागवतम्)

भगवान् ने ऐसा कह तूष्णीभाव अवलम्बन पूर्वक पिता-माता के सामने देखते-देखते सद्यः जात शिशु रूप हो गये। स्वयं भगवान् रामकृष्ण में स्व स्वरूपानन्दा-स्वादन जीवन भर चलता ही रहा।

अतएव, इस दृष्टि से उपर्युक्त 'साधु परित्राण' 'दुष्कर्मियों के विनाश' और धर्म स्थापन का एक दूसरा रूप होता है और उसी के लिए स्वयं भगवान का अवतरित होना प्रेमी भक्तजन मानते हैं—

'स्वयं भगवान अपने इस अखिल रसामृत मूर्त्ति अचिन्त्य-अनिर्वचनीय परस्पर-विरुद्ध गुण-धर्माश्रय स्वरूप घनीभूत परम प्रेमानन्द-सुधामय मधुर मनोहर दिव्याति-दिव्य चिन्मय नित्य लीला-विग्रह का दर्शन-दान करके उन साधुओं का परित्राण करते हैं जो अपने परम प्रियतम भगवान के नित्य मंगलमय, दिव्य प्रेम रसमय और परमानन्द रसमय दर्शन की तीव्रतम उत्कंठा मे अतुलनीय विरह-वेदना का अनुभव कर रहे हैं और अपने जीवन के एक-एक पल को भीषण विरहानल की भयानक ज्वाला से दग्ध होते बिता रहे हैं। यही उनका साधु परित्राण है।

इसी प्रकार स्वयं भगवान् उन दुष्कृतिकारियों के उन परम सौभाग्यशाली असुरों की देह का वियोग करके उन्हें सहज ही अपने ऋषि-मुनि-योगी-दुर्लभ दिव्य परम कल्याग रूप परमधाम में पहुँचा देते हैं, जो केवल भगवान् के मंगलमय दिव्य कर कमलों द्वारा देह-त्याग करके भगवान् के दिव्यधाम में पहुँचने के अधिकारी बन चुके हैं। भगवान् के स्वहस्त से निहत होकर वे सदा के लिए पृथ्वी को परित्याग करके भगवद्धाम में चले जाते हैं, अतएव वस्तुतः इसी से पृथ्वी का भार हरण होता है। भगवान् का यह 'निग्रह' ही 'परम अनुग्रह' रूप होता है। इसमें भगवान् उन असुरों का बध नहीं करते, परन्तु स्व-स्वरूप दान करके उन्हें कृतार्थ करते हैं। यही दुष्कर्मियों का विनाश है

एवं धर्म-संस्थान का अभिप्राय यह है कि भगवान् उस काम-कलुषित, मोह विजृम्भित विषय सेवन रूप अधर्म के अभ्युत्थान का ध्वंस करके मुक्ति-भुक्ति की वांछा के सहज सर्वत्याग सुसंपन्न परम उत्कृष्ट मनोरम मधुर विशुद्ध गुणातीत प्रेम धर्म की स्थापना करते हैं। यह परम माधुर्यावतार का मंगल दिवस है। जिन लोगों को पंचम पुरुषार्थ भगवत्प्रेम की प्राप्ति की इच्छा हो, उन्हें भगवान के इस मधुर स्वरूप की उपासना करनी चाहिए।

महासमन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण

—श्री उमेश चन्द्र

परमहंस श्रीरामकृष्ण देव स्वयं हिन्दू धर्मावलम्बी थे, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति वे आजीवन सहनशील बने रहे। अपनी वेदान्तसाधना के ही क्रम में उन्होंने सभी प्रमुख धर्मों के तत्वों का अनुशीलन किया। धर्म उनके लिए जीवन की साधना का अविछिन्न पथ था, जिसकी ओर वे असीम तन्मयता से बढ़ते रहे एवं उसका हृदयंगम किया। धर्म के बाह्य आडम्बरों ने कभी भी उन्हें आकृष्ट नहीं किया। उन्हें धर्म की बाह्य रूपरेखा के प्रति सदैव वितृष्णा रही। धर्म को उन्होंने साधन-पथ के रूप में स्वीकृत किया एवं अन्ततोगत्वा आत्मतत्व के रहस्योद्‌घाटन में वे सफल हुए। सभी प्रमुख धर्मों की विधिवत् साधना कर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि सभी धर्म मौलिक सत्य की प्रतिछाया नहीं वरन् सत्यस्वरूप हैं एवं मनुष्य मात्र को परम लक्ष्य की प्राप्ति में पूर्ण सहायक एवं सक्षम हैं।

परमहंस श्रीरामकृष्ण देव का जीवन पूर्णतया साधन-मय था। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में उन्होंने वैष्णव तंत्रोक्त साधना में सिद्धि प्राप्त की। वेदोक्त अद्वैत ज्ञान की चरम सीमा निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति के पश्चात् भी उनकी सत्य के प्रति पिपासा शान्त न हुई। "इन भिन्न-भिन्न पन्थों की साधना करते समय श्रीरामकृष्ण उनमें ऐसे तन्मय हो जाते कि उस समय उस साधना को छोड़कर अन्य कोई भी बात उनके मन में नहीं आती थी।"[1] अद्वैत उपासना के पश्चात् परमहंस श्रीरामकृष्ण ने इस्लाम धर्म की उपासना की प्रेरणा प्राप्त की।

"भिन्न-भिन्न धर्मों का अध्ययन करते हुए उनका ध्यान मुसलमान धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और सभी धर्मों में वही धर्म उन्हें पसन्द आया। अतः उन्होंने मुसलमान धर्म की दीक्षा ली और तभी से वे कुरान के पाठ और उसमें बतायी हुई साधनाओं के अनुष्ठान में ही निमग्न रहने लगे। वे बड़े प्रेमी स्वभाव के थे। सम्भवतः वे मुसलमान धर्म में के सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।"[2]

इस्लाम धर्म की साधना की ओर उनकी उन्मुखता गोविन्द राय के सम्पर्क में ही आने के पश्चात् हुई। परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने अनुभव किया कि इस्लाम धर्म से भी भगवद्प्राप्ति सम्भव है। भगवद्-प्राप्ति के इस मार्ग की जिज्ञासा ने ही उन्हें मुसलमान धर्म की दीक्षा लेकर विधिवत इस पथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"उस समय मैं अल्ला मन्त्र का जप करता था, मुसलमानों की तरह लाग खोलकर धोती पहनता था और तीन बार नमाज पढ़ता था। उन दिनों मन से हिन्दूभाव का निःशेष लोप हो गया था और हिन्दू देवी-देवताओं को प्रणाम करना तो दूर रहा उनके दर्शन करने तक की प्रवृत्ति नहीं होती थी। इस प्रकार तीन दिन बीतने के बाद उस मत का साधन-फल सम्यक् रूप से हस्तगत हुआ था। प्रथम तो मुझे लम्बी दाढ़ी बढ़ाये हुए गम्भीर, ज्योतिर्मय पुरुष-प्रवर का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ था और बाद में मेरा मन अद्वैत भाव में लीन हो गया।"[3]

इस्लाम धर्म की साधना के समय श्रीरामकृष्ण देव

---

१. श्रीरामकृष्ण लीलामृत प्रथम—भाग—पं० द्वारकानाथ तिवारी, पृष्ठ ३`२

२. तथैव—द्वितीय भाग—पं० द्वारकानाथ तिवारी, पृष्ठ ४६

३. तथैव ,, ,, पृष्ठ ४७

ने अपने आचार एवं विचार पूर्णतया मुसलमानों के समान रखे। मुसलमान धर्म की साधना के समय मथुरामोहन जी ने एक मुसलमान रसोइया लाकर श्रीरामकृष्ण देव को भोजन कराया था। श्रीरामकृष्ण देव ने यह अनुभव किया था कि "हिन्दू तथा मुसलमानों के अन्दर मानो पर्वत जैसा व्यवधान विद्यमान है—इतने दिन तक एक साथ रहते हुए भी परस्पर के चिन्तन, धार्मिक विश्वास तथा आचरण एक दूसरे के लिए दुर्ज्ञेय बने हुए हैं। वह पहाड़ अन्तर्हित होगा तथा दोनों प्रेम पूर्वक आपस में गले लगेंगे।"[4] इसी विचार से निष्णात हो उन्होंने मुहम्मद साहब के प्रत्यक्ष दर्शन किये एवं यह अनुभव किया कि इस्लाम धर्म की साधना अद्वैत साधना का ही एक रूप है।" एक मात्र वेदान्त-विज्ञान पर निर्भर शील होकर ही भारत के हिन्दू तथा मुसलमान परस्पर सहानुभूति सम्पन्न तथा भ्रातृभाव में निबद्ध हो सकते हैं।'[5]

"श्रीरामकृष्ण देव ने जिस प्रकार प्रत्येक मत के किंचिन्मात्र भेद का परित्याग न कर समस्त अनुराग के साथ जीवन में प्रत्येक मत के अनुसार साधना में प्रवृत हो प्रत्येक के निर्दिष्ट तथ्य पर पहुँच कर उस विषय का प्रत्यक्ष अनुभव किया था, पहले किसी भी आचार्य ने इस तरह इस सत्य की उपलब्धि नहीं की थी।"[6] सभी धर्म के प्रति आदर का भाव एवं सभी धर्मों की साधना-पद्धति का उस विचार-धारा के परिवेश में अनुशीलन करते हुए सत्य का अन्वेषण स्वयं में एक उपलब्धि थी। यही कारण है कि हम परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की इसी उदारता से उन्हें पूर्व धर्माचार्यों एवं ऋषियों की कोटि से सर्वोपरि मानने के लिए तत्पर हैं। श्रीरामकृष्णदेव के मुख से निःसृत "जतो मत ततो पथ" की सत्य वाणी ने समस्त विश्व को अपनी उदारता एवं निष्कलुषता से मुग्ध कर दिया है।

परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने ईसाई धर्म की भी साधना-पद्धति का हृदयंगम इसी सत्य के संधानस्वरूप किया था। सन १८७४ के नवम्बर में मल्लिक नाम के व्यक्ति से उनका परिचय हुआ। उन्हीं के सम्पर्क में आने के पश्चात् ईसाइयों के पवित्र धर्मग्रंथ बाइबिल का पाठ उन्होंने दक्षिणेश्वर के समीप एक कबीले में सुना। बाइबिल उनके लिए पुस्तक मात्र नहीं रह पायी। बरन् 'शब्दों ने रक्त-मांसमय शरीर धारण कर लिया।'

"एक दिन मेरी व उसके पुत्र का चित्र देखकर चित्र की मूर्तियाँ मूर्तिमात्र ही न रहीं, वे पूर्णतया जीवंत हो गयीं। "वे दृश्य मूर्त्तियाँ उनके समीप आयीं और इस प्रकार उनके अन्दर प्रविष्ट हो गयीं, कि उनकी समस्त सत्ता में व्याप्त हो गयीं। इस बार का यह अन्तःप्लावन पहले के इस्लामिक अन्तःप्लावन की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली था। इसने समस्त बन्धनों को तोड़कर उनकी समस्त आत्मा को आच्छन्न कर लिया। हिन्दू विचारों को दूर बहा दिया। भयभीत होकर तरंगमालाओं से संघर्ष करते हुए रामकृष्ण ने क्रन्दन किया; "ओ! माँ तुम क्या कर रही हो? मेरी मदद करो।" परन्तु वह व्यर्थ था। ज्वार की लहर तो जो कुछ भी उसके सम्मुख था उसे बहा चुकी थी। हिन्दू की आत्मा परिवर्तित हो चुकी थी। ईसा के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं था। कई दिनों तक वह ईसाई चिन्तन और ईसा के प्रेम में ही निमग्न रहे। उनके दिल से मन्दिर में जाने का विचार निकल गया। इसी अवस्था में एक दिन अपराह्न वेला में दक्षिणेश्वर के बगीचे में उन्होंने देखा कि एक आयत लोचन, शान्त मूर्त्ति, गौरांग पुरुष उनकी तरफ चला आ रहा है। यद्यपि वे यह न जानते थे कि वह कौन है, तथापि वे अपने अज्ञात अतिथि के जादू के वशीभूत हो गये। वह उनके समीप आया; और रामकृष्ण की आत्मा की गहराई में किसी का सुमधुर कण्ठ सुनाई दिया।

"उस ईसा के दर्शन करो; जिसने विश्व की मुक्ति

४. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग—स्वामी सारदानन्द, पृ० ३८४
५. तथैव ,, ,, पृष्ठ ३८४
६. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग द्वितीय खंड पृष्ठ ४०५

के लिए अपने हृदय का रक्त दिया है, जिसने मनुष्य के प्रेम के लिए असीमित वेदना का सहन किया है। यही वह श्रेष्ठ योगी है, जो भगवान के साथ तादात्म्य में संयुक्त है। यह ईसा हैं जो प्रेम के अवतार हैं।"

मानव-पुत्र ने भारत के महर्षि; माँ के पुत्र को आलिंगन पाश में बाँधकर अपने में समा लिया। रामकृष्ण भावाविष्ट हो गये। और एकबार फिर प्रभु के साथ एक रूप हो गये। धीरे-धीरे वे पुनः पृथ्वी पर लौट आये पर उस समय से भगवान के अवतार ईसा के देवत्व में विश्वास करने लगे।"[7]

परमहंस श्री रामकृष्णदेव भगवान बुद्ध को साक्षात् अवतार समझते थे एवं बौद्धधर्म एवं वैदिक ज्ञानमार्ग में उन्होंने किसी प्रकार का अन्तर अनुभव नहीं किया। सिक्खों के प्रति भी वे पूर्णतया उदार थे। सिक्खों के दस गुरुओं के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव कहते थे—

"सिक्खों से मैंने सुना है कि वे सभी जनक ऋषि के अवतार हैं, मुक्ति लाभ करने से पूर्व राजर्षि जनक के हृदय में लोक-कल्याण-साधन करने की इच्छा उदित हुई थी और इसी कारण उन्होंने गुरुनानक से लगाकर गुरुगोविन्द तक दस गुरुओं के रूप में दस बार जन्म लिया था तथा सिक्ख जाति में धर्म संस्थापन कर परब्रह्म के साथ वे सदा के लिए लीन हो गये थे; सिक्खों की उस बात के असत्य होने का कोई भी कारण नहीं है।"[8]

जैन-धर्म के प्रति भी उनकी सम्यक् भक्ति थी। अन्यान्य देव-देवियों के चित्रों के साथ महावीर तीर्थंकर की एक पाषाण मूर्त्ति तथा श्री ईसा का एक चित्र भी उनके कमरे में था, जिनके समक्ष भक्ति-भाव से वे प्रतिदिन धूप-धुना देते थे।

परमहंस श्रीरामकृष्णदेव की सभी धर्मों के प्रति समान रुचि थी। उन्होंने ब्रह्म समाज के मंत्रों के बीच कहा था......" बात यह है कि देश काल और पात्र के भेद से ईश्वर ने अनेक धर्मों की सृष्टि की है। परन्तु सब मत ही उनके रास्ते हैं, पर मत कभी ईश्वर नहीं है। बात यह है कि आन्तरिक भक्ति के द्वारा एक मत का आश्रय लेने पर उनके पास तक पहुँचा जाता है। अगर किसी मत का आश्रय लेने पर कोई भूल उसमें रहती है, तो आन्तरिकता के होने पर वे भूल सुधार देते हैं। अगर कोई आन्तरिक भक्ति के साथ जगन्नाथपुरी के दर्शनों के लिए निकलता है और भूलकर दक्षिण की ओर न जाकर उत्तर की ओर चला जाता है, तो रास्ते में उसे कोई अवश्य कह देता है 'क्यों भाई, उस तरफ कहाँ जाते हो, दक्षिण की ओर जाओ' वह आदमी कभी न कभी जगन्नाथ के दर्शन अवश्य ही करेगा।

"परन्तु इस बात की आलोचना हमारे लिए निष्प्रयोजन है कि दूसरों का मत गलत है। जिनका यह संसार है वे सोच रहे हैं। हमारा तो यह कर्त्तव्य है कि किसी तरह जगन्नाथपुरी के दर्शन करें। ......उन्हें निराकार कह रहे हो यह अच्छा तो है। मिश्री की रोटी सीधी तरह से खाओ या टेढ़ी करके खाओ; मीठी जरूर लगेगी।

"केवल कट्टरता अच्छी नहीं होती। तुमलोगों ने बहुरुपिये की कहानी सुनी होगी। एक आदमी ने जंगल में जाकर पेड़ पर एक गिरगिट देखा। मित्रों के पास लौटकर उसने कहा, मैंने एक लाल गिरगिट देखा। उसको विश्वास था वह बिल्कुल लाल है। एक आदमी और उस पेड़ के नीचे से लौटकर आया और उसने कहा मैं एक हरा गिरगिट देखकर आया हूँ। उसका विश्वास था, वह बिल्कुल हरा है। परन्तु जो मनुष्य उस पेड़ के नीचे रहता था, उसने आकर कहा तुमलोग जो कुछ कहते हो, ठीक है क्योंकि वह कभी लाल होता है, कभी पीला और कभी उसके कोई रंग नहीं होता।

"वेदों में ईश्वर को निर्गुण सगुण दोनों कहा है। तुम लोग केवल निराकार कह रहे हो, यह एक खास ढर्रे का है परन्तु इससे कोई हर्ज नहीं। एक का यथार्थ ज्ञान हो जाय तो दूसरे का भी हो जाता है।"[9]

---

७. रामकृष्ण : रोमां रोलाँ अनु० डॉ० रघुराज एवं धनराज विद्यालंकार पृ० ९२-९३
८. श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग द्वितीय खंड स्वामी सारदानन्द पृ० ४३९.
९. श्रीरामकृष्ण वचनामृत : श्री म : अनु० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला पृ० ३५८-३५९

श्रीरामकृष्ण अपने शिष्यों से कहा करते थे—"मैंने हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मों का अनुशीलन किया है। हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न पथों का अनुसरण किया है···मैंने देखा है कि उसी एक भगवान की तरफ ही सबके कदम बढ़ रहे हैं; यद्यपि उनके पथ भिन्न-भिन्न हैं। तुम्हें एक बार प्रत्येक विश्वास की परीक्षा तथा भिन्न-भिन्न पथों पर पर्यटन करना चाहिए।"[10] मैं जिधर भी दृष्टि डालता हूँ उधर ही हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्म, वैष्णव व अन्य सभी सम्प्रदायवादियों को धर्म के नाम पर परस्पर लड़ते देखता हूँ। परन्तु वे कभी इस बात पर विचार नहीं करते कि जिसे हम कृष्ण के नाम से पुकारते हैं, वही शिव है, वही आद्या शक्ति है, वही ईश्वर है, वही अल्लाह है, सब उसी के नाम हैं—एक ही राम के सहस्त्रों नाम हैं। एक तालाब के अनेक घाट हैं। एक घाट पर हिन्दू अपने कलसे में पानी भरते हैं और उसे जल कहते हैं और दूसरे घाट पर मुसलमान अपने मटकों में पानी भरते हैं और उसे 'पानी' नाम देते हैं; तीसरे घाट पर ईसाई लोग जल लेते हैं और वे उसे वाटर की संज्ञा देते हैं। क्या हम यह कल्पना कर सकते हैं कि वह वारि 'जल' नहीं है अपितु केवल 'पानी' अथवा 'वाटर' ही है? कितनी हास्यास्पद बात है? भिन्न नामों के आवरण के नीचे एक ही वस्तु है; और प्रत्येक उसी वस्तु की खोज कर रहा है; जलवायु, स्वभाव तथा नाम ही भिन्न है अन्यथा और कोई भेद नहीं है। प्रत्येक मनुष्य को अपने मार्ग पर चलने दो यदि उसके अन्दर हार्दिक भाव से भगवान को जानने की उत्कट लालसा है तो उसे शान्तिपूर्वक चलने दो। वह अवश्य ही उसे पा लेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण ने सभी धर्मों की प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त कर सबका समन्वय अपने में किया और जीवों को वह मार्ग बताया जिससे दूसरे धर्मों का आदर करते हुए हम अपने धर्म का अन्तर्मन से पालन कर ईश्वर लाभ कर सकते हैं। आज के युग में इसकी कितनी आवश्यकता है, यह हम सब समझ सकते हैं।

□□□

'यदि किसी एक भी जीव में ब्रह्म का विकास हो तो सहस्रों मनुष्य उसी ज्योति से मार्ग देखकर आगे बढ़ते हैं। जो पुरुष ब्रह्मज्ञ होते हैं वे ही केवल लोकगुरु बन सकते हैं; यह बात शास्त्रों और युक्ति से प्रमाणित होती है। स्वार्थयुक्त ब्राह्मणों ने जो कुलगुरु प्रथा का प्रचार किया है वह वेद और शास्त्रों के विरुद्ध है।......भगवान श्री रामकृष्ण धर्म की यह सब ग्लानि दूर करने के लिए शरीर धारण करके वर्त्तमान युग में इस संसार में अवतीर्ण हुए थे। उनके प्रदर्शित सार्वभौमिक मत का प्रचार होने से ही जीव और जगत् का मंगल होगा। इनसे पूर्व सभी धर्मों को समन्वय करने वाले ऐसे आचार्य ने कई शताब्दियों से भारत वर्ष में जन्म नहीं लिया था।'

—स्वामी विवेकानन्द

१०. श्रीरामकृष्ण कथामृत २, १७ (रोमां रोलां की पुस्तक से उद्धृत)
११. ,, द्वितीय भाग पृष्ट २४८ (,,)

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण—जन्मोत्सव

—श्री 'म'

कालीमन्दिर में आज श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव है। फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया है, दिन रविवार, ११ मार्च १९६३ ई०। आज श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग भक्त उन्हें लेकर जन्मोत्सव मनायेंगे।

सबेरे से भक्त एक एक करके एकत्र हो रहे हैं। सामने माता भवतारिणी का मन्दिर है। मंगलारती के बाद ही प्रभाती रागिणी में मधुर तान लगाती हुई नौबत बज रही है। वसन्त का सुहावना मौसम है, लता-वृक्ष नये कोमल पल्लवों से लहराते हुए दीख पड़ते हैं। इधर श्रीरामकृष्ण के जन्मदिन की याद करके भक्तों के हृदय में आनन्द-सिंधु उमड़ रहा है। चारों ओर आनन्द-समीरण बह रहा है। मास्टर ने देखा, इतने सबेरे ही भवनाथ, राखाल, भवनाथ के मित्र कालीकृष्ण आ गये हैं। श्रीरामकृष्ण पूर्ववाले बरामदे में बैठे हुए इनसे प्रसन्नतापूर्वक वार्तालाप कर रहे हैं। मास्टर ने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया।

× × ×

दिन के साढ़े-आठ या नौ बजे होंगे। श्रीरामकृष्ण ने आज गंगा में स्नान नहीं किया, शरीर कुछ अस्वस्थ है। घड़ा भरकर पानी बरामदे में लाया गया। भक्त उनको स्नान करा रहे हैं। नहाते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा, "एक लोटा पानी अलग रख दो।" अन्त में वही पानी सिर पर नहीं डाला।

स्नान के बाद मधुर कण्ठ से भगवान् का नाम ले रहे हैं। धोया हुआ कपड़ा पहने, एक-दो भक्तों के साथ आँगन से होते हुए कालीमाता के मन्दिर की ओर जा रहे हैं। मुख से लगातार नाम उच्चारण कर रहे हैं। चितवन बाहर की ओर नहीं है—अण्डे का सेते समय चिड़िया की दृष्टि जिस प्रकार होती हैं उसी के सदृश हो रही है।

कालीमाता के मन्दिर में जाकर आपने प्रणाम और पूजा की। पूजा का कोई नियम न था—गन्ध पुष्प कभी माता के चरणों में देते हैं और कभी अपने सिर पर। अन्त में माता का निर्माल्य सिर पर रख भवनाथ से कहा, 'यह लो डाब।'[1] माता का प्रसादी डाब था।

फिर आँगन से होते हुए अपने कमरे की तरफ आ रहे हैं। साथ में भवनाथ और मास्टर हैं। भवनाथ के हाथ में डाब है। रास्ते की दाहिनी ओर श्रीराधाकान्त का मन्दिर है, जिसे श्रीरामकृष्ण 'विष्णुधर' कहा करते थे। इन युगलमूर्तियों को देखकर आपने भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। बायीं ओर बाहर शिवमन्दिर थे। शिवजी को हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगे।

अब श्रीरामकृष्ण अपने डेरे पहुँचे। देखा कि और भी कई भक्त आये हुए हैं। राम, नित्यगोपाल, केदार चटर्जी आदि अनेक लोग आये हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। आपने भी उनसे कुशल-प्रश्न पूछा।

नित्य गोपाल को देखकर श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं, 'तू कुछ खायेगा?' ये भक्त उस समय बालक के भाव में थे। इन्होंने विवाह नहीं किया था, उम्र तेईस-चौबिस की होगी। ये सदा भावराज्य में रहते थे और कभी अकेले, कभी राम के साथ प्रायः श्रीरामकृष्ण के पास आया करते थे। श्रीरामकृष्ण इनकी भावावस्था को देखकर इनसे बड़ा प्यार करते हैं—और कभी-कभी कहते हैं कि इनकी परमहंस की अवस्था है। इसलिए आप इनको गोपाल जैसे देख रहे हैं।

१. कच्चा नारियल

भक्त ने कहा, 'खाऊँगा'। उनकी बातें ठीक एक बालक की-सी थीं।

खिलाने के बाद श्रीरामकृष्ण उनको गंगा की ओर अपने कमरे के गोल बरामदे में ले गये और उनसे बातें करने लगे।

एक परम भक्त महिला, जिनकी उम्र कोई इकतीस-बत्तीस वर्ष की होगी, श्रीरामकृष्ण के पास अक्सर आती हैं और उनकी बड़ी भक्ति करती हैं। वे भी इन भक्त की अद्‌भुत भावावस्था को देखकर इन्हें अपने लड़के की भाँति प्यार करती हैं और इन्हें प्रायः अपने घर लिवा ले जाती हैं।

श्रीरामकृष्ण (भक्त से)—क्या तू वहाँ जाता है?

नित्यगोपाल (बालक की तरह)—हाँ, जाता हूँ। मुझे लिवा ले जाती है।

श्रीरामकृष्णः—अरे साधु सावधान! एक-आध बार जाना, बस। ज्यादा मत जाना, नहीं तो गिर पड़ेगा! कामिनी और कांचन ही माया है। साधु को स्त्रियों से बहुत दूर रहना चाहिए। वहाँ सब डूब जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा और विष्णु तक लोटपोट हो जाते हैं।

भक्त ने सब सुना।

मास्टर (स्वगत)—क्या आश्चर्य की बात है! इन भक्त की परमहंस की अवस्था है—यह तो आप स्वयं ही कहते हैं। इतनी उच्च अवस्था होते हुए भी इनके पतन की आशंका है! साधुओं के लिए आपने क्या ही कठिन नियम बना दिये हैं! स्त्रियों के साथ अधिक मिलने-जुलने से साधु का पतन होने की सम्भावना रहती है। यह उच्च आदर्श सामने न रहे तो भला जीवों का उद्धार कैसे हो? वह स्त्री तो भक्त ही है। फिर भी भय है! अब समझा, श्रीचैतन्यदेव ने छोटे हरिदास को इतनी कठोर सजा क्यों दी थी। महाप्रभु के मना करने पर भी हरिदास ने एक भक्त महिला से वार्तालाप किया था। परन्तु हरिदास संन्यासी थे। इसलिए महाप्रभु ने उन्हें त्याग दिया। कितनी कठोर सजा! संन्यासी के लिए कितना कठिन नियम! फिर इन भक्त पर आपका कितना प्रेम है! आगे चलकर कोई विपत्ति न आ पड़े, इसलिए पहले ही से इन्हें सचेत कर रहे हैं। भक्तगण निःस्तब्ध होकर 'साधु सावधान' यह गम्भीर वाणी सुन रहे हैं।

× × ×

भोजन के उपरान्त श्रीरामकृष्ण छोटे तख्त पर आराम कर रहे हैं। कमरे में लोगों की भीड़ बढ़ रही है। बाहर के बरामदे भी लोगों से भरे हैं। कमरे के भीतर जमीन पर भक्त बैठे हैं और श्रीरामकृष्ण की ओर एकदृष्टि से ताक रहे हैं। केदार, सुरेश, राम, मोहन, गिरीन्द्र, राखाल, भवनाथ, मास्टर आदि बहुत लोग वहाँ पर मौजूद हैं। राखाल के पिता आये हैं, वे भी वहीं बैठे हैं।

एक वैष्णव गोसाईं भी उसी स्थान पर बैठे हैं। श्रीरामकृष्ण उनसे बातें कर रहे हैं। गोसाइयों को देखते ही श्रीरामकृष्ण सिर झुकाकर प्रणाम करते थे—कभी कभी तो उनके सामने साष्टांग प्रणाम करते थे।

नाममाहात्म्य अथवा अनुराग?

श्रीरामकृष्ण—अच्छा, तुम क्या कहते हो? उपाय क्या है?

गोसाईं—जी, नाम से ही सब कुछ होगा। कलियुग में नाम की बड़ी महिमा है।

श्री रामकृष्ण—हाँ, नाम की बड़ी महिमा तो है, पर बिना अनुराग के क्या हो सकता है? ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होने चाहिए। सिर्फ नाम लेता जा रहा हूँ, पर चित्त कामिनी और कांचन में है, इससे क्या होगा?

"बिच्छू या मकड़ी के काटने पर खाली मंत्र से वह अच्छा नहीं होता—उसके लिए कण्डे का ताप भी देना पड़ता है।"

गोसाईं—तो अजामिल का क्यों हुआ? वह महापातकी था, ऐसा पाप ही न था जो उसने न किया हो; पर मरते समय अपने लड़के को 'नारायण' कहकर बुलाने से ही उसका उद्धार हो गया।

श्रीरामकृष्ण—शायद अजामिल पूर्वजन्म में बहुत कर्म कर चुका था। और यह भी लिखा है कि उसके बाद में तपस्या भी की थी।

"अथवा यों कहो कि उस समय उसके अन्तिम क्षण आ गये थे। हाथी को नहला देने से क्या होगा, फिर धूल-मिट्टी लिपटाकर वह ज्यों का त्यों हो जाता है। पर हाथीखाने में घुसने के पहले ही अगर कोई उसकी धूल झाड़ दे और उसे नहला दे तो फिर उसका शरीर साफ रह सकता है।"

"मान लिया कि नाम से जीव एक बार शुद्ध हुआ, पर वह फिर तरह-तरह के पापों में लिप्त हो जाता है। मन में बल नहीं; वह प्रण नहीं करता कि फिर पाप नहीं करूँगा। गंगा स्नान से सब पाप मिट जाते हैं सही, पर सब लोग कहते हैं कि वे पाप एक पेड़ पर चढ़े रहते हैं मनुष्य गंगा जी से नहा कर लौटता है, तो वे पुराने पाप पेड़ से कूदकर फिर उसके सिर पर सवार हो जाते हैं। (सब हँसे।) उन पुराने पापों ने उसे फिर घेर लिया! दो-चार कदम चलते ही उसे धर दबाया!"

"इसलिए नाम भी करो और साथ ही प्रार्थना भी करो कि ईश्वर पर अनुराग हो, और जो चीजें दो दिन के लिए हैं—जैसे,धन, मान, देहसुख आदि—उनसे आसक्ति घट जाय।

वैष्णवधर्म तथा साम्प्रदायिकता

(गोसाईं से)—"यदि आन्तरिकता हो तो सभी धर्मों से ईश्वर मिल सकते हैं। वैष्णवों को भी मिलेंगे तथा शाक्तों, वेदान्तियों और ब्राह्मणों को भी, मुसलमानों और ईसाइयों को भी। हृदय से चाहने पर सब को मिलेंगे। कोई-कोई झगड़ा कर बैठते हैं। वे कहते हैं कि हमारे श्रीकृष्ण को भजे बिना कुछ न बनेगा; या हमारी काली-माता को भजे बिना कुछ न होगा; अथवा हमारे ईसाई धर्म को ग्रहण किये बिना कुछ न होगा।"

"ऐसी बुद्धि का नाम हठधर्म है, अर्थात् मेरा ही धर्म ठीक है और बाकी सब गलत। यह बुद्धि खराब है। ईश्वर के पास हम बहुत रास्तों से पहुँच सकते हैं।"

"फिर कोई कोई कहते हैं कि ईश्वर साकार हैं, निराकार नहीं। यह कहकर वे झगड़ने लग जाते हैं! जो वैष्णव है वह वेदान्ती से झगड़ता है।"

"यदि ईश्वर के साक्षात् दर्शन हों, तो सब हाल ठीक-ठीक बताया जा सकता है। जिसने दर्शन किये हैं वह ठीक जानता है कि भगवान साकार भी हैं और निराकार भी; वे और भी कैसे-कैसे हैं, यह कौन बताये!"

"कुछ अन्धे एक हाथी के पास गये थे। एक ने बता दिया, इस चौपाये का नाम हाथी है। तब अन्धों से पूछा गया, हाथी कैसा है? वे हाथी की देह छूने लगे। एक ने कहा, हाथी खम्भे के आकार का है! उसने हाथी का पैर ही छुआ था। दूसरे ने कहा, हाथी सूप की तरह है! उसके हाथ हाथी के कान पर पड़े थे। इसी तरह किसी ने पेट पकड़कर कुछ कहा, किसी ने सूँड़ पकड़कर कुछ कहा। ऐसे ही ईश्वर के सम्बन्ध में जिसने जितना देखा है, उसने यही सोचा है कि ईश्वर बस ऐसे ही हैं, और कुछ नहीं।"

"एक आदमी शौच के लिए गया था। लौट कर उसने कहा, मैंने पेड़ के नीचे एक सुन्दर लाल गिरगिट देखा दूसरे ने कहा, "तुमसे पहले मैं उस पेड़ के नीचे गया; परन्तु वह लाल क्यों होने लगा? वह तो हरा है, मैंने अपनी आँखों से देखा है।" तीसरे ने कहा, "मैं तुम दोनों से पहले गया था, उसको मैंने भी देखा है; परन्तु वह न लाल है, न हरा; वह तो नीला है।" और दो थे; उनमें से एक ने बताया पीला, और एक ने, खाकी। इस तरह अनेक रंग हो गये। अन्त में सब में झगड़ा होने लगा। हर एक का यही विश्वास था कि उसने जो कुछ देखा है, वही ठीक है। उनकी लड़ाई देख एक ने पूछा, 'तुम लड़ते क्यों हो? जब उसने कुल हाल सुना तब कहा, 'मैं उसी पेड़ के नीचे रहता हूँ; और उस जानवर को मैं खूब पहचानता हूँ। तुममें से हर एक का कहना सच है। वह कभी हरा, कभी नीला, इस तरह अनेक रंग धारण करता है। और कभी देखता हूँ, कोई रंग नहीं! निर्गुण है!"

साकार अथवा निराकार?

(गोस्वामी से)—ईश्वर को सिर्फ साकार कहने से क्या होगा! वे श्री कृष्ण की तरह मनुष्य रूप धारण करके आते हैं, यह भी सत्य है; अनेक रूपों से भक्तों को दर्शन

देते हैं; यह भी सत्य हैं; और फिर वे निराकार अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, यह भी सत्य है। वेदों ने उनको साकार भी कहा है, निराकार भी कहा है; सगुण भी कहा है और निर्गुण भी।

"किस तरह, जानते हो? सच्चिदानन्द मानों एक अनन्त समुद्र है। ठंढक के कारण समुद्र का पानी बर्फ बनकर तैरता है। पानी पर बर्फ के कितने ही आकार के टुकड़े तैरते हैं। वैसे ही भक्तिहिम के लगने से सच्चिदानन्द-सागर में साकार मूर्त्ति के दर्शन होते हैं। वे भक्त के लिए साकार होते हैं। फिर जब ज्ञानसूर्य का उदय होता है तब बर्फ गल जाती है, फिर वही पहले का पानी ज्यों का त्यों रह जाता है। ऊपर-नीचे जल ही जल भरा हुआ है। इसीलिए श्री मद्भागवत में सब स्तव करते हैं, 'हे देव, तुम्हीं साकार हो, तुम्हीं निराकार हो। हमारे सामने तुम मनुष्य बने घूम रहे हो, परन्तु वेदों ने तुम्हीं को वाक्य और मन से परे कहा है।'

'परन्तु यह कह सकते हो कि किसी-किसी भक्त के लिए वे नित्य साकार हैं। ऐसा भी स्थान है जहाँ बर्फ गलती नहीं, स्फटिक का आकार धारण करती है।"

केदार—श्रीमद्भावत में व्यासदेव ने तीन दोषों के लिए परमात्मा से क्षमाप्रार्थना की है। एक जगह कहा है, हे भगवन्, तुम मन और वाणी से दूर हो, किन्तु मैंने केवल तुम्हारी लीला, तुम्हारे साकार रूप का वर्णन किया; अतएव अपराध क्षमा करो।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, ईश्वर साकार भी हैं और निराकार भी, फिर साकार-निराकार के भी परे हैं। उनकी इति नहीं की जा सकती।

× × ×

दिन के तीसरे पहर भक्तगण पंचवटी में कीर्त्तन कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण भी उनमें मिल गये; भक्तों के साथ मातृनाम-संकीर्त्तन करते हुए आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

(गीत का भावार्थ)—"श्याम माँ के चरणरूपी आकाश में मन की पतंग उड़ रही थी। कलुष की वायु से वह चक्कर खाकर गिर पड़ी। माया का कन्ना भारी हुआ, मैं उसे फिर उठा नहीं सका। स्त्री-पुत्रादि के तागे में उलझकर वह फट गयी। उसका ज्ञान रूपी मस्तक (ऊपर का हिस्सा) अलग हो गया है। उठाने से ही वह गिर पड़ती है। जब सिर ही नहीं रह गया तो वह उड़ कैसे सकती है! साथ के छः आदमियों की (काम-क्रोधादि की) विजय हुई। वह भक्ति के तागे से बँधी थी। खेलने के लिए आते ही तो यह भ्रम सवार हो गया। 'नरेशचन्द्र' को इस हँसने और रोने से तो बेहतर आना ही न था।"

फिर गाना होने लगा। गीत के साथ ही मृदंग करताल बजने लगे। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ नाच रहे हैं।

(गीत का भावार्थ) :—"मेरा मन-मधुप श्यामापद-नीलकमल में मस्त हो गया। कामादि पुष्पों में जितने विषय-मधु थे, सब तुच्छ हो गये। चरण काले हैं, मधुप काला है, काले से काला मिल गया। पंचतत्व यह तमाशा देखकर भाग गये। 'कमलाकान्त' के मन की आशा इतने दिनों में पूर्ण हुई। सुख-दुःख दोनों बराबर हुए; केवल आनन्द का सागर उमड़ रहा है।"

कीर्तन हो रहा है, और भक्त गा रहे हैं।

(भावार्थ) :—'श्यामा माँ ने एक कल बनायी है। साढ़े-तीन हाथ की कल के भीतर वह कितने ही रंग दिखा रही है। वह स्वयं कल के भीतर रहकर कल की डोर पकड़ कर उसे घुमाया करती है। कल कहती है, मैं खुद घूमती हूँ। वह यह नहीं जानती कि कौन उसे घुमा रहा है। जिसने कल को पहचान लिया है, उसे कल न होना होगा। किसी कल की भक्तिरूपी डोर में श्यामा माँ स्वयं बँधी हुई है।"

भक्त लोग आनन्द करने लगे। जब उन्होंने थोड़ी देर के लिए गाना बन्द किया तब श्रीरामकृष्ण उठे। इधर-उधर अभी अनेक भक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण पंचवटी से अपने कमरे की ओर जा रहे हैं। मास्टर साथ हैं। बकुल के पेड़ के नीचे जब वे आये तब त्रैलोक्य से भेंट हुई। उन्होंने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण (त्रैलोक्य से)—पंचवटी में वे लोग गा रहे हैं, एक बार चलकर देखो तो।

त्रैलोक्य—मैं जाकर क्या करूं ?

श्रीरामकृष्ण—क्यों, देखने का आनन्द मिलता।

त्रैलोक्य—एक बार देख आया।

श्री रामकृष्ण—अच्छा, ठीक है।

× × ×

साढ़े-पाँच या छः बजे का समय है। श्रीरामकृष्ण भक्तों के साथ अपने कमरे के दक्षिण-पूर्ववाले बरामदे में बैठे हुए हैं। भक्तों को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (केदार आदि भक्तों से)—जो संसार त्यागी है वह तो ईश्वर का नाम लेगा ही। उसको तो और दूसरा काम ही नहीं। वह यदि ईश्वर का चिंतन करता है तो उसमें आश्चर्य की बात क्या है! वह यदि ईश्वर की चिन्ता न करे, यदि ईश्वर का नाम न ले, तो तो लोग उसकी निन्दा करेंगे।

"संसारी मनुष्य यदि ईश्वर का नाम जपे, तो समझो उसमें बड़ी मर्दानगी है। देखो, राजा जनक बड़े ही मर्द थे। वे दो तलवारें चलाते थे, एक ज्ञान की और एक कर्म की। एक ओर पूर्ण ज्ञान था, और दूसरी ओर वे संसार का कर्म कर रहे थे। बदचलन स्त्री घर के सब कामकाज बड़ी खूबी से करती है, परन्तु वह सदा अपने यार की चिंता में रहती है।

"साधुसंग की सदा आवश्यकता है। साधु ईश्वर से मिला देते हैं।"

केदार—जी हाँ, महापुरुष जीवों के उद्धार के लिए आते हैं। जैसे रेलगाड़ी के इंजन के पीछे कितनी ही गाड़ियाँ बँधी रहती हैं, परन्तु वह उन्हें घसीट ले जाता है। अथवा जैसे नदी या तड़ाग कितने ही जीवों की प्यास बुझाते हैं।

क्रमशः भक्तगण घर लौटने लगे। सभी ने श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ हो प्रणाम किया। भवनाथ को देखकर श्री रामकृष्ण बोले, "तू आज न जा, तुझ जैसे को देखते उद्दीपना हो जाती है।"

भवनाथ अभी संसारी नहीं हुए। उम्र उन्नीस-बीस होगी। गोरा रंग, सुन्दर देह। ईश्वर के नाम से आँखों में आँसू आ जाते हैं। श्रीरामकृष्ण उन्हें साक्षात् नारायण देखते हैं!

[रामकृष्ण मठ, नागपुर से प्रकाशित श्री 'म' रचित श्रीरामकृष्णवचनामृत, प्रथम भाग से सानुमति—साभार—सं०]

□□□

श्रीरामकृष्ण परमहंस

—आचार्य डा० उमेशचन्द्र मधुकर

जय परमहंस श्रीरामकृष्ण जय जय हो,
तव धवल कीर्ति सारे जग में अक्षय हो।
तुम पुनः शक्ति प्रेरणा भरो जन-जन में,
यह विगलित जीवन फिर से मंगलमय हो।

तुमने नरेन्द्र की सोयी शक्ति जगायी,
मानव को अतिमानव की राह दिखायी।
वह बना विवेकानन्द जगत् का त्राता,
उसने जग-जग में धर्म-ध्वजा फहरायी।

तुम आये थे तब पंडित यहाँ बहुत थे,
वेदों, शास्त्रों से मंडित यहाँ बहुत थे।
अरबी, अंग्रेजी का भी ज्ञान भरा था,
पर भक्ति, प्रेम से खंडित यहाँ बहुत थे।

शास्त्रार्थ हुआ करते थे परंपरागत,
ईसा मसीह थे बड़े कि बुद्ध तथागत।
शिव, राम, कृष्ण, काली किसकी हो पूजा,
सर्वत्र इन्हीं झगड़ों का होता स्वागत।

कुछ अति पाश्चात्य समझते थे अपने को,
मिथ्या कहते थे ध्यान, नाम जपने को।
दंभी नास्तिक विद्वान बहुत थे ऐसे,
जो ढोंग बताते ऋषियों के तपने को।

उस परिभाषा से तुम विद्वान नहीं थे,
दुखिया गरीब थे, तुम धनवान नहीं थे।
फिर भी तुम क्या बन गए सभी ने देखा,
क्या धरती पर तुम भी भगवान नहीं थे ?

तुमने नमाज में भी अच्छाई देखी,
तुमने कुरान में भी सच्चाई देखी।
[illegible] पूजाएँ और साधनाएँ कीं,
तुमने ईसा में भी भारी भलाई देखी।

बाइबिल की बातें भी तो तुमको भायीं;
उनकी पूजा, अर्चना बहुत अपनायीं।
तुमने उनके सिद्धान्तों को भी माना,
जीवन की सच्चाइयाँ वहाँ भी पायीं।

तुमको तो मस्जिद—चर्च सभी मंदिर थे,
तुमको तो जग में कहीं नहीं काफिर थे।
आत्मा की ज्योति जगी थी तुममें ऐसी,
तुमको तो जग के सब रहस्य जाहिर थे।

जब लोग पूछते—मूर्ति स्वयं ईश्वर कैसे हो सकती है,
हों तर्क, प्रमाण अकाट्य नहीं, तो यों ही बुद्धि भटकती है।
तुम हँसते और कहा करते—क्यों करते पंचायत इतनी,
प्रभु स्वयं सत्य बतलाएगा, मूर्त्तियाँ सत्य कैसी कितनी।

जब सच्ची भक्ति उपजती है पत्थर में चेतनता आती,
सच्चे भक्तों को देख मूर्त्ति मिट्टी की भी है मुसकाती।
पथिकों की शक्ति और रुचि ही कुछ इधर-उधर भी भरमातीं,
पर सच है, राहें धर्मों की सब एक लक्ष्य तक ले जातीं।

तुम ब्रह्म कहो या परमात्मा, चाहे उसको भगवान कहो,
तुम अपनी किसी साधना को भी योग भक्ति या ज्ञान कहो।
इसमें है कोई भेद नहीं, तुम कभी मान जाओगे ही,
जब ऊँचे चढ़कर देखोगे तो स्वयं जान जाओगे ही।

जब पूछा गया—उपाय भक्ति का क्या है बतला दो प्रभुवर,
बोले—करना सत्संग और भजना उसको जो परमेश्वर।
वह राम, कृष्ण, शिव, काली कोई हो, इसकी परवाह न हो,
बस प्रेम किया करना, उनसे कुछ भी पाने की चाह न हो।

प्रभु- दर्शन सुन तुम हँसते थे, कहते थे, दर्शन देगा ही,
यदि माँ के बच्चों जैसा प्रभु के लिए भक्त रोएगा ही।
माँ कभी नहीं रुक सकती है सुनकर निज बच्चों की पुकार,
यदि उसी लगन से भक्त पुकारे प्रभु आते हैं बार-बार।

तुम घर परिवार सँभालो ही, हाँ, अनासक्त-से रहकर ही,
जैसे रहते हैं पद्मपत्र जल में विभक्त-से रहकर ही।
तुम भक्ति-तेल सिंचित-कर से जग-कटहल को कितना काटो,
उसका माया—लासा न लगेगा, तुम चाहे जितना काटो।

दुनिया में रहने पर दुनिया की कुछ तो रीति निभानी है।
फिर प्रभु की धुन में मस्त रहो, संतों की यही निशानी है।
जब स्वयं रासमणि रानी भी बोलीं—कीर्त्तन आरम्भ करो,
पर ध्यान सजावट में था, कहतीं—इन फूलों को यहाँ धरो।

तुमने रानी स्वामिनी न समझा, थप्पड़ उनको लगा दिये,
उनके सब झूठे ज्ञान, शान, अभिमान शीघ्र ही भगा दिये।
तुम सारे बाह्याडंबर को अति तुच्छ धूल बतलाते थे,
सच्चे हृदयों में पले प्रेम को सदा फूल बतलाते थे।

कितना भी हो विराट् आयोजन प्रभु को उससे लेना क्या!
यदि हृदय समर्पण-पूर्ण नहीं तो प्रभु को कुछ भी देना क्या!
तुम कहते थे—जिज्ञासु सदा मक्खन की तरह हुआ करता,
चूल्हे पर चढ़ते ही गड़-गड़ करता है और धुआं करता।

यह तो जलांश है, अहंकार है, उसको और जलाना है,
जब केवल घी या ज्ञान बचेगा उसको चुप हो जाना है।
गुरु पक्का घी है और शिष्य कच्ची बेली पूरी-सा है,
तब तक होती आवाज कि जब तक उनमें कुछ दूरी-सा है।

जल गया जलांश और पूरी जब पकी, शांति छा जाती है,
जब अहंकार मिट गया, मौन की भाषा ही आ जाती है।
अधजल गगरी ही सदा छलकती, पूर्ण-कलश चुप रहता है,
वाणी अपूर्ण कैसे कह पाए पूर्ण मौन जो कहता है।

गुरु वह है जिसको निर्विकल्प जैसी समाधि लग जाती है,
फिर भी जिसकी आत्मा धरती का मंगल करने आती है।
लोकोपकार करने को उसको अहंकार बस नाम मात्र,
वह कृपा—दया के दान हेतु ढूंढ़ता स्वयं ही कहाँ पात्र।

ये ही गुरु संत महात्मा हैं इनको पहुँचे इन्सान कहो,
या श्रद्धा—भक्ति बहुत हो तो, इनको भी तुम भगवान कहो।

अबके भारत के इस विघटित जीवन में,
यदि कहीं भेद का भाव नहीं जन-जन में।
तो मात्र तुम्हारे ही आश्रम में संभव,
सारे भेदों से रहित सभी तन-मन में।

लेकिन हम सब मोहान्ध तमोगुण धारी,
श्रद्धा-विश्वास-विहीन सकल नर-नारी।

हम ज्ञान, योग या भक्ति सभी कुछ भूले,
सोचते, हाय, कैसी दुर्दशा हमारी।
कुछ करो कि खुशियाँ फिर से सभी मनाएँ,
कुछ करो, देवगण पुनः पुष्प बरसाएँ।
तुम स्वयं पधारो फिर भारत में अथवा,
कुछ करो, विवेकानन्द शीघ्र आ जाएँ।

श्री सारदा देवी

—श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज
सचिव, रामकृष्ण मिशन, पटना

चतुर्दश अध्याय
(गया और पुरीधाम-दर्शन)

एक तो गंगा का तट, उसपर स्थान भारी निर्जन ! वहाँ कुछ समय मन के आनन्द के लिए साधन-भजन में काटकर सारदादेवी ने गया क्षेत्र जाने का प्रयास किया। श्री रामकृष्ण ने तो सभी तीर्थस्थानों का दर्शन किया नहीं था, उन्हीं सब में से कई स्थानों का नाम लेकर उन्होंने एक दिन सारदादेवी को उन सब का दर्शन करने कहा था; विशेष कर गया क्षेत्र जाकर चन्द्रमणिदेवी की आत्मा के कल्याण के लिए विष्णुपादपद्म में पिण्डदान करने का आदेश उन्हें दिया था। इस पुण्यतीर्थ में जाकर सारदादेवी ने पितृपुरुषों का श्राद्धादि यथानियम किया। वहाँ रहते समय एक दिन बुद्ध गया का दर्शन करने गयी थीं। यहाँ तपस्या के अन्त में पूर्णज्ञान-लाभकर सिद्धार्थ 'बुद्ध' रूप में परिचित हुए। यहाँ मठ का ऐश्वर्य देख, श्रीरामकृष्ण के सर्वत्यागी युवक संन्यासी शिष्यों के अन्न-वस्त्र के अभाव की बात का स्मरण कर उनके कोमल प्राण व्यथित हो उठे। उन्होंने आकुल भाव से भगवान के निकट प्रार्थना की, उन आत्मभोला सन्तानों के सिर छिपाने के निमित्त एक स्थान के लिए। ठाकुर ने उनकी यह प्रार्थना सुनी थी—इसी प्रार्थना के फलस्वरूप बेलुड़ मठ स्थापित हुआ था, यह बात उन्होंने बाद में अनेक बार कही थी।

गया से लौटकर वे बेलुड़ के नीलाम्बर बाबू के भाड़े के मकान में वास करने गयीं। साथ में वे ही पहले के तीन सेवक-सेविकाएँ।

नीलाम्बर बाबू के उद्यान में छः महीने निवास करने के बाद सारदादेवी ने अनेक पुरुष और स्त्री भक्तों के साथ पुरीधाम की यात्रा की। उड़ीसा राज्य के अन्तर्गत कोठार नामक स्थान में श्रीरामकृष्ण के परम भक्त बलराम बोस की जमींदारी थी वे। पहले कोठार जाकर ठहरीं। आजकल तो पुरी जाना कुछ नहीं है। अब तो छोटे-छोटे बच्चे भी अपने माँ-बाप, आत्मीय-स्वजन के साथ दक्षिण-पश्चिम में कितने दूर-दूरान्तर तक तीर्थ-भ्रमण करने आते हैं। किन्तु इन क्षेत्रों में जब रेल, स्टीमर और मोटर गाड़ी का प्रचलन नहीं हुआ था, तब तीर्थ-भ्रमण कितना कष्टसाध्य था, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। उन दिनों जो पाँव-पैदल तीर्थ-दर्शन के लिए यात्रा करते थे वे पुनः वापस आने की आशा का परित्याग कर सब से विदा लेते थे। दुर्गम पथ में चोर, डकैत, रोग, विशुद्ध खाद्य और जल के अभाव आदि विपदाओं का तो अन्त नहीं था !

सारदादेवी जब पुरी जा रही थीं उस समय सारी राह पैदल नहीं जाने से भी काम चल जाता था। जहाज पर चढ़कर समुद्र से जाने में जिन्हें जाति-च्युत होने का भय नहीं था, वे कलकत्ते से उड़ीसा के चाँदवाली बन्दरगाह तक जहाज से जा पाते थे। चाँदवाली से कटक तक छोटी स्टीमर आती-जाती थी। सारदादेवी के संगीगण उन्हें इसी रास्ते से ले गये थे।

कटक शहर महानदी के तट पर है। महानदी पार होने पर पुरी जाने के तीन उपाय थे। पहला, काफी रुपये-पैसे खर्च कर सकने में समर्थ होने पर पालकी पर चढ़कर जाना; दूसरा बैलगाड़ी से जाना; और तीसरा उपाय पाँव-पैदल जाना। नदी पार होने पर दो बैल-गाड़ियाँ ठीक की गयीं। एक पर चढ़ीं सारदादेवी और दूसरी पर योगेन-माँ और गोलाप- माँ। बाकी सब

संन्यासी और गृहस्थ भक्तगण बैलगाड़ियों के पीछे-पीछे पाँव-पैदल चले—'जय जगन्नाथ, जय महाप्रभु' की ध्वनि करते-करते।

सुबह होते न होते, वे सब उठकर प्रातः कर्म से निवृत्त हो, साधारण जलपान कर, निकल पड़ते तीर्थदेवता के नाम की जय-ध्वनि करते हुए। दोपहर को किसी चट्टी पर अथवा जलाशय के तट पर वृक्ष के नीचे विश्राम करते। रसोई बनाने में तो महा झंझट होती है। इसमें बहुत समय लगता है। स्नान करने के बाद चिउँरा-गुड़ आदि से वे सब अपने मध्याह्न-भोजन का समाधान करते। तदुपरान्त फिर उन लोगों का चलना शुरू होता। संध्या होने के पहले किसी चट्टी पर आकर वे विश्राम करते तथा रसोई बनाकर भोजन करते। कटक से पुरी-धाम अधिक दूर नहीं है, साठ मील के भीतर ही है। फलतः तीर्थयात्रियों के इस प्रकार के मार्ग का क्लेश हमारे यात्रीदल को तीन-चार दिनों से अधिक नहीं भोगना पड़ा।

यही है वह जगन्नाथधाम। कितने इतिहास, कितनी कहानियाँ हैं इस नाम से जुड़ी हुई। यहाँ का मन्दिर और यहाँ का रथ सम्पूर्ण भारतवासियों के हृदय में जाग्रत करते हैं, अपरिसीम श्रद्धा और भक्ति तथा विदेशी, विधर्मी विश्ववासियों के मन में जगाते हैं एक अपूर्व विस्मय। भारत के श्रेष्ठ आचार्यगण आये थे इस पुण्यक्षेत्र का दर्शन करने। आचार्य शंकर ने यहाँ किया था ज्ञान की महिमा का विस्तार और आचार्य रामानुज आये थे यहाँ भक्ति की प्रधानता के स्थापन के लिए। फिर माता बंगाल के स्नेह के दुलारे श्रीगौरांगदेव ने इसके पथ-पथ पर हरिप्रेम का वितरण कर इस पुण्यतीर्थ में दीर्घकाल तक निवास कर उड़ीसावासियों को कृतार्थ किया था। आज आये हैं, इस युग के मनुष्यों को विवेक, वैराग्य और समन्वय की वाणी सुनाने, जिन्होंने बंगाल की भूमि पर शरीर धारण किया था, उन्हीं श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी और उनके प्रिय शिष्यगण। इस पुण्यक्षेत्र में उपस्थित होने के पश्चात् उन लोगों के प्राणों में भाव-भक्ति के कितके उच्छ्वास उठने लगे, इसका वर्णन कौन कर पायेगा ?

क्षेत्रवासी के मठ में सामान रखकर वे सब धूल-धूसरित पाँवों से जगन्नाथ का दर्शन करने चले। एक लाख शालग्रामशिलाओं की वेदी के ऊपर जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियाँ हैं। सारदादेवी ने देखा, जैसे पुरुषसिंह विराज रहे हैं।

पुरीधाम में वे सब जिनके अतिथि हुए थे, उनकी वहाँ काफी ख्याति थी। सारदादेवी के ऊपर उनकी विशेष श्रद्धा-भक्ति देखकर मन्दिर के पंडा गोविन्द सिंगारा की भी इच्छा उनकी विशेष खातिरदारी करने की हुई। पंडा ने उन्हें पालकी पर मन्दिर ले जाना चाहा, लेकिन उन्होंने कहा—"नहीं गोविन्द, तुम मुझे मन्दिर ले चलो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे अनाथ भिखारिनी की भाँति संसार के स्वामी (जगन्नाथ) को देखने जाऊँगी।"

पुरी में वे अग्रहायण से फाल्गुन महीने तक थीं। सारदादेवी पहले दोनों वेला मन्दिर जाती थीं। बाद में नित्य सायंकाल जातीं और आरती देखतीं। प्रतिदिन अपना अधिकांश समय वे जप-ध्यान में व्यतीत करतीं।

सन् १३०८ साल (सन् १९०२ ई०) में उन्होंने फिर एकबार पुरीधाम का दर्शन किया।

—(क्रमशः)

□□□

भवसागर पार उतारो जी !

—ब्रह्मचारी तृप्ति चैतन्य

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

भक्तदास पितृविहीन किशोर था। आयु कोई १५-१६ वर्ष। कब कहाँ जन्म हुआ—उसे मालूम नहीं था। छोटा था, तभी माता-पिता उसे छोड़ चल बसे। सौन्दर्य, सरलता और प्रेम की प्रतिमूर्त्ति उस युवक पर तरस खा—नौ सेना के एक अधिकारी ने उसे नौ सेना में नियुक्त कर लिया।

अधिकारी था रक्षपाल। रक्षपाल को अपने जीवन में सन्तान-सुख न मिला था। भक्तदास को पाकर उसका पितृ-हृदय उमड़ पड़ा—जीवन में प्रेम की धारा बह चली। एक क्षण के लिए भी भक्तदास को देखे बिना रक्षपाल की आँखें सूनी हो जातीं। भक्तदास भी अत्यन्त प्रसन्न हो—भूल गया कि वह माता-पिता-विहीन था।

बिना प्रेम के जीवन सूना होता है।

एक दिन—रक्षपाल का जहाज सागर पर कहीं जा रहा था। सागर की विराट—लहरें ऊँची उठ रही थीं, मानो किसी के मिलन की व्याकुलता उन्हें अतृप्त किये थीं। रक्षापाल ने एक सैनिक से कहा—भक्तदास को बुलाओ—उसने भक्त को खोजा। भक्त न मिला। उसने आकर उत्तर दिया—"स्वामी, भक्त नहीं मिल रहा।" "नहीं मिल रहा—खोजा उसको ?"

पूरा जहाज खोजा गया—कोई स्थान अछूता न रखा गया। परन्तु भक्तदास का पता न चला। रक्षपाल अस्थिर हो उठे। उनकी वाणी गूँजी—किसने उसको देखा है—अन्त में एक सैनिक ने उत्तर दिया— स्वामी एक बेला पूर्व मैंने भक्त को जहाज के किनारे समुद्र की ओर मुँह किये देखा था।

क्या ? किसी अज्ञात शंका से रक्षपाल कांप उठे—उनका शरीर सिहर उठा—आँखें भींग आयीं। आज्ञावाणी गूँजी—जहाज को उसी स्थान पर वापिस ले चलो—जहाँ भक्त को देखा गया था। नाविकों ने कहा—"स्वामी आपकी शंका सत्य है—परन्तु—"

"परन्तु क्या—मेरा भक्त नहीं मरेगा—सागर के जीव उसका कुछ न बिगाड़ सकेंगे—मैंने, मैंने उसका भार लिया है।"

और जहाज वापिस लौट पड़ा।

निर्दिष्ट स्थान पर जहाज ले जाकर भक्तदास की खोज की गयी। छोटी नौकाएँ समुद्र में उतारी गयीं। परन्तु दीर्घकाल की खोज का कुछ लाभ न हुआ। आँखों में अश्रुधारा भर कातर स्वर से रक्षपाल प्रार्थना किये जा रहे थे—

"हे प्रभु..., स्वामी भक्तदास ..., नहीं-नहीं, भक्त दास जीवित है, और यह कह कर रक्षपाल स्वयं दूरदर्शक यंत्र लेकर जहाज के मस्तूल पर उठे। उन्होंने चारो ओर देखा। तभी उनकी आँखें एक स्थान पर स्थिर हो गयीं। कोई वस्तु दूर समुद्र के वक्ष पर हिल रही थी। निश्चय-ही, निश्चय ही वह भक्तदास...। उसने फिर नाविकों को दिशा-निर्देश कर नौका ले जाने को कहा। नाविक फिर निर्दिष्ट स्थान की ओर छूटे—हाँ, भक्तदास था—ज्ञान-शून्य—तैरता हुआ।

भक्तदास को तुरन्त जहाज पर लाया गया। रक्षपाल की आँखों से प्रेमाश्रु की धारा फूट उठी। प्राथमिक

उपचार द्वारा उसके पेट से पानी निकाला गया।

रक्षपाल ने पुत्रतुल्य भक्त को आलिंगन-बद्ध किया। भक्त ने आनन्द से रक्षपाल को जकड़ लिया। चारो ओर प्रेम ही प्रेम छा गया।

रक्षपाल ने पूछा—"भक्त, प्रिय पुत्र, इतने लम्बे समय तक भयानक समुद्री जीवों के बीच तुम कैसे बचे रहे? किस शक्ति और विश्वास ने तुम्हारी रक्षा की?"

"स्वामी, मेरी तुम्हारे प्रति इस भक्ति और विश्वास ने कि जब कभी मैं इस सागर के वक्ष पर विपत्ति में पहुँचा—तुम आकर मेरी रक्षा करोगे।"—भक्तदास ने उत्तर दिया।

"प्रिय आत्मन्, यह संसार सागर है, हमलोग जीवन-नैया पर सावार हैं। यदि वास्तव में हमारा गुरु पर, प्रभु पर, यह सच्चा विश्वास हो कि इस भवसागर में मैं जब कभी गिर जाऊँगा तब वे निश्चय ही, निश्चय ही आयेंगे मेरी रक्षा को, तो वे निश्चय ही आकर—भवसागर से पार उतार देंगे।

रामकृष्ण-पंचामृत

—डॉ० केदारनाथ लाभ

(१)

बहुत हुई दौड़-धूप, बहुत हुआ खटना
उन्मादी दायित्वों से पड़ा निपटना;
अब तो अपने अन्तर्मठ मे ही बैठा तू
ओ रे मन, परमहंस रामकृष्ण रटना।

(२)

जो कुछ भी आता है, सब कुछ है सहना
विचलित मत होना तू, आत्मसंस्थ रहना;
सुख-दुःख के खेल सदा चलते ही रहते हैं
पल-पल तू रामकृष्ण—रामकृष्ण कहना।

(३)

एक हाथ जीवन के कर्मों में लगा रहे
एक हाथ से लेकिन प्रभु के पद गहिए;
काम के समापन पर युग-कर से प्रभु-पद धर
रामकृष्ण—रामकृष्ण—रामकृष्ण कहिए।

(४)

सागर की लहरों पर सूखे तिनके-सा नित
लालसा-तरंगों पर और नहीं बहिए;
पल-पल निश्छल निर्मल सरल चित्त से केवल
रामकृष्ण—रामकृष्ण—रामकृष्ण कहिए।

(५)

नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त,हम हैं आनन्द-रूप
पापी-तापी निज को भूल से न कहिए;
जैसी मति, वैसी गति होती है, इसीलिए
घड़ी-घड़ी रामकृष्ण—रामकृष्ण कहिए।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है, और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है

— स्वामी विवेकानन्द

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

SWAMI VIVEKANANDA.